श्रीकालिदासविरचितः

श्रुतबोधः

('श्रुति' संस्कृत तथा 'स्मृति' हिन्दी टीकोपेतः)

सम्पादक तथा टीकाकार
डॉ० बृजेश कुमार शुक्ल
वरिष्ठ प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
लखनऊ-विश्वविद्यालय
लखनऊ

न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन
दिल्ली भारत

श्रीकालिदासविरचितः

श्रुतबोधः

('श्रुति' संस्कृत तथा 'स्मृति' हिन्दी टीकोपेतः)

सम्पादक तथा टीकाकार
डॉ॰ बृजेश कुमार शुक्ल
वरिष्ठ प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
लखनऊ- विश्वविद्यालय
लखनऊ

With Best Compliments
From Author and Publisher

न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन
दिल्ली भारत

प्रकाशक : न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन
दुकान न० १८, ५५७४ ए० , चौधरी काशीराम मार्किट,
दुर्गा काम्पलेक्स, न्यु चन्द्रावल,
दिल्ली–११०००७

प्रथम संस्करण : 2000

मूल्य : 30.00 साधारण संस्करण
50.0C पुस्तकालय संस्करण

टाईप सैटिंग : गीता कम्प्यूटर
सी-४४६, गली न० १०, मजलिस पार्क,
दिल्ली–११००३३

मुद्रक : जैन अमर प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली–110007

समर्पणम्

किंग जार्ज मेडिकल कालेज के भूतपूर्व प्राचार्य तथा लखनऊ
विश्वविद्यालय के कुलपतिचर

माननीय

(स्वर्गीय) प्रो० आर० बी० सिंह जी

की

पुण्य-स्मृति

में

श्रद्धया सादर समर्पित

—बृजेश

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ([illegible])

[illegible]

[illegible]

[illegible]

प्राक्कथन

ऋग्वेद संसार का सर्वप्राचीन ग्रन्थ है और यह छन्दोबद्ध रूप में प्राप्त होता है। अतः छन्दः शास्त्र निश्चप्रच प्राचीनतम शास्त्र है। वैदिक छन्दों के अनन्तर लौकिक छन्दों का विकास हुआ। वैदिक छन्दों की भाँति लौकिक छन्द प्रारम्भ में अल्पसङ्ख्यक रहे होंगे, परन्तु ज्यों ज्यों मानव-मस्तिष्क की वैकासिक प्रक्रिया प्रारम्भ हुई त्यो-त्यों मनोहारी गीतों में लयात्मकता के पृथक्करण से अनेक छन्द संस्कृत साहित्य में निर्मित हुए। बाल्मीकि रामायण में क्रौञ्चवद्य के प्रसङ्ग में प्रयुक्त अनुष्टुप् छन्द के अनन्तर अन्य लौकिक छन्दों का प्रचलन हुआ। इस छन्दः शास्त्र को अभिव्यक्त करने के लिए अनेक ग्रन्थों की रचना की गयी जिनमें पिङ्गलाचार्य का 'पिङ्गलसूत्रम्' कदाचित् सर्वप्राचीन माना जा सकता है। इसी छन्दः शास्त्रीय ग्रन्थों की परम्परा में श्रीकालिदास-विरचित 'श्रुतबोध' नामक प्रस्तुत लघुग्रन्थ भी है। 'श्रुतबोध' की छन्दः प्रवचन शैली अत्यधिक बोध गम्य है। यही कारण है कि इस ग्रन्थ की लोकप्रियता प्राचीन समय से आज तक अक्षुण्ण बनी हुई है। इस ग्रन्थ में मात्रिक तथा वर्णिक दोनों छन्दों का वर्णन है। वर्णिक छन्द गणानुसार न होकर केवल वृत्त चरणों में लघु गुरु के क्रमानुसार बतलाये गये हैं। गणों की अर्वाचीनता मानने से यह ग्रन्थ अवश्य ही प्राचीनतम सिद्ध होता है। परन्तु किसी प्राचीन ग्रन्थ अथवा टीका में इसका अनुहरण अवश्य ही इसकी प्राचीनता में बाधक है। 'श्रुतबोध' ग्रन्थ के पठन-पाठन से इसकी उपादेयता सर्वथा सिद्ध है। निम्न कक्षाओं में इसका पठन-पाठन होने के कारण ग्रन्थ में आये शृङ्गारिक सम्बोधन पदों को पण्डितों ने अपनी इच्छानुसार परिवर्तित कर दिया है। अतः 'श्रुतबोध' के मूल पाठ का अन्वेषण एक कठिन कार्य है। सम्पादक ने इस सन्दर्भ में श्रुतबोध के कई संस्करणों का अध्ययन करके ग्रन्थ के मूल पाठ को रखने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त अन्य पाठान्तरों को सम्यक्तया उपस्थापित करके ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ाने का प्रयास किया गया है। सम्पादक ने ग्रन्थ पर 'श्रुति' संस्कृत तथा 'स्मृति' हिन्दी स्वरचित टीकाएं लिखकर अपनी मौलिक प्रतिभा से ग्रन्थ को सुबोध बनाने का सफल प्रयत्न किया है। 'श्रुत बोध' का यह प्रथम संस्करण है जो विभिन्न पाठान्तरों के साथ प्रस्तुत हुआ है। संस्कृत तथा हिन्दी टीकाओं

में पिङ्गलसूत्र, वृत्तरत्नाकर, छन्दोमञ्जरी, सुवृत्ततिलक तथा वृत्तमुक्तावली के अन्तर्गत प्राप्त छन्दों के लक्षण भी समुद्धृत किये गये हैं। अतः यह संस्करण विद्यार्थियों के साथ-साथ जिज्ञासु सुधीजनों के लिए भी समुपादेय होगा ।

इस कार्य के सम्पादन में जिन सुश्री विद्वज्जनों से प्रेरणा एवं प्रकाश मिला है, लेखक उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन हेतु कृत सङ्कल्प है । सर्वप्रथम लेखक विशिष्टाद्वैतदर्शन के प्रतिष्ठित विद्वान् तथा अन्याम्य विषयों के मर्मज्ञ लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत प्राकृत भाषाविभाग में आचार्य पदाभिषिक्त गुरु प्रवर प्रो० अशोक कुमार कालियाजी के प्रति हृदय से आभारी है जिनकी प्रतिभा किरणों से परिसिञ्चित यह कार्य पूर्णता की ओर अग्रसर हुआ है । संस्कृत प्राकृत भाषा विभाग के आचार्य तथा अध्यक्ष, साहित्य और दर्शन के अप्रतिम सुश्री गुरूवर प्रो० उमेशप्रसाद रस्तोगी के प्रति लेखक कार्तय ज्ञापन करता है जिनकी सत्प्रेरणा और सहयोग लेखक को सतत प्राप्त होता रहा है । इसके अतिरिक्त जिन महानुभावों और परिवारीजनों से लेखक को अपेक्षित सहायता तथा सहयोग अधिगत हुआ है उन सबके प्रति लेखक विनयावनत है ।

सम्पादक तथा टीकाकार प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्येताओं से निवेदन करता है कि मानव सुलभ त्रुटियां यदि इस ग्रन्थ में दृष्टिगत होती हैं, तो वे अवश्य सं सूचित करें जिससे अग्रिम संस्करण में उनका संशोधन हो सके ।

।। इति शम् ।।

विद्वद्वशंवद
डॉ बृजेश कुमार शुक्ल

स्थान– लखनऊ
श्रीराम नवमी, २०५६ वि० सं०
(संस्कृत संवत्सर)

विषयानुक्रमणी

विषया पृष्ठानि

उपोद्घात

छन्द शब्द का संस्कृत साहित्य में व्यापक स्तर पर प्रयोग किया गया है। छन्द शब्द से प्रायः वेद अर्थ प्रकट होता है जैसा कि – 'छन्दसि बहुलम्', 'छन्दसि दृष्टानुविधिः' तथा 'छन्दोवत्सूत्रणि भवन्ति' इत्यादि स्थलों पर छन्द शब्द का प्रयोग किया गया है। छन्द का वास्तविक अर्थ स्वेच्छाचार, मत, अभिलाष और कामना है। कदाचित् व्याकरण की वैदिक स्वेच्छाचारिता हेतु ही छन्द शब्द वेद अथवा वेदवाङ्मय का पर्याय बन गया हो, ऐसी अवधारणा की जा सकती है। 'स्वच्छन्द' आदि शब्द 'छन्द' शब्द से ही प्रादुर्भूत हैं। 'छन्दस्' शब्द की व्युत्पत्ति 'छदि संवरणे' (चुरादिगण धातु सं० ४४) से 'असुन्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होती है। परन्तु यह शब्द आज केवल पद्यमय कविता अथवा वेद के अर्थ में रूढ हो गया है।

'छन्दः पादौ तु वेदस्य' कहकर छन्द को वेद के पैर की सञ्ज्ञा दी गयी है। वेद छन्द पर अधिष्ठित है तथा वैदिक छन्द को विना जाने हुए वैदिकमन्त्रों का विनियोग पाठक को पापीयान् बना देता है। वेद के षडङ्गों में छन्द का इसी लिए अपना विशिष्ट स्थान है। संस्कृत-वाङ्मय विना किसी अनुशासन के चल ही नहीं सकता। अतः जैसे शब्दानुशासन व्याकरण से, वाक्यानुशासन मीमांसा से, उच्चारणानुशासन शिक्षा से तथा कवितानुशासन साहित्य से किया जाता है उसी प्रकार वर्णानुशासन छन्दः शास्त्र से अपेक्षित है। परन्तु व्याकरण आदि सम्पूर्ण संस्कृतभाषा के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं जिनसे तत्तद् विषयों का नियमन किया जाता है, जब कि छन्दः शास्त्र का विषय केवल भाषागत पद्यमात्र ही है।

छन्दःशास्त्र चाहे वैदिक हो अथवा लौकिक, सर्वत्र अक्षर का नियमन प्रभावित होता है। अक्षर से तात्पर्य स्वर से है क्यों कि छन्दः शास्त्र में केवल व्यञ्जन का कोई महत्त्व नहीं है। किन्तु व्यञ्जन संयुक्त रूपेण आकर ह्रस्व को दीर्घ बनाने में महत्त्वपूर्ण सहयोग देते हैं। अक्षरों में ह्रस्व तथा दीर्घ का प्रयोग छन्दःशास्त्र में क्रमशः लघु और गुरु के रूप में जाना जाता है। ह्रस्व (लघु) की एक मात्रा तथा दीर्घ (गुरु) की दो मात्राएं मानी जाती हैं। मात्रा का अर्थ उच्चारण काल विशेष से है। छन्दःशास्त्र में अक्षरों का नियमन लघु-गुरु के विशिष्ट क्रम से अथवा विशिष्ट अक्षरसंख्या से किया जाता है। इस प्रकार अक्षरानुशासन कदाचित् छन्दः शास्त्र को मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

छन्दःशास्त्रीय परम्परा

निश्चित रूपेण ऋग्वेद की ऋचाएं छन्दोबद्ध हैं अतः छन्दः शास्त्र का इतिहास प्राचीन है और इसका प्रादुर्भाव भारतवर्ष में ही हुआ यह कहना गलत न होगा। वेद के षडङ्गों में छन्द का स्थान भी कदाचित् वैदिक वाङ्मय के छन्दोबद्ध होने का प्रमाण है। ब्राह्मण ग्रन्थों में छन्दो विषयक विचार आये हैं तथा शाङ्ख्यायन श्रौतसूत्र, निदानसूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य तथा कात्यायन की ऋग्वेद तथा यजुर्वेद की अनुक्रमणियों के खण्डों में भी छन्द पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। छन्दःशास्त्र पर एक सूत्र-ग्रन्थ 'पिङ्गलसूत्र' प्राप्त होता है जिसमें वैदिक तथा लौकिक दोनों छन्दों का वर्णन किया गया है। प्रायः सभी ने आचार्य पिङ्गल को छन्दः शास्त्र का आद्यप्रणेता माना है। परन्तु यह कहना कठिन है कि पिङ्गल ही प्रथम छन्दः शास्त्र के आचार्य हैं, क्योंकि पिङ्गल ने अपने सूत्रों में काश्यप, शैतव आदि आचार्यों का समुल्लेख किया है। इससे जाना जा सकता है कि पिङ्गल के पूर्व भी छन्दः शास्त्र के आचार्य थे। पिङ्गल आचार्य के नाम से प्रथित एक 'प्राकृतपिङ्गलसूत्र' प्राप्त होता है जो बहुत बाद का है। अग्निपुराण का छन्दोविषयक वर्णन पिङ्गल से लिया गया है। नाट्यशास्त्र के १४वें तथा १५वें अध्यायों में प्राप्त छन्दोविषयक विचार पिङ्गल से परवर्ती माने जा सकते हैं। इस प्रकार 'पिङ्गलसूत्र' से पूर्ववर्ती छन्दःशास्त्रसम्बन्धी कोई ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है ऐसा मानना युक्तिसङ्गत है। अलङ्कारशास्त्रीय आचार्य भामह तथा दण्डी ने छन्दःशास्त्र पर कोई ग्रन्थ लिखे थे, परन्तु वे आज प्राप्त नहीं हो रहे हैं। बराहमिहिर ने 'बृहत् संहिता के १०४ अध्याय में ग्रहों की गतियों के साथ छन्दों का भी निरूपण किया है। अतः छन्दःशास्त्र का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है और समय-समय पर आवश्यकता के अनुरूप छन्दोविषयक ग्रन्थ लिखे गये और नये-नये छन्दों का लक्षण तथा प्रयोग भी बतलाया गया है।

छन्द के सम्बन्ध में यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि वैदिक छन्द परम्परा से ही लौकिक छन्दः कल्लोलिनी निर्गत हुई है। यह सर्वविदित ही है कि वैदिक अनुष्टुप् छन्द के बाद वाल्मीकि का क्रौञ्च विषयक शोक ही लौकिक अनुष्टुप् अथवा श्लोक के रूप में प्रस्फुटित हुआ और तभी से लौकिक छन्दों का अवतरण हुआ। वेद के त्रिष्टुप् आदि छन्द इन्द्रवज्रा, उपेन्द्र वज्रा आदि के रूप में परिणत हुए। छन्दः शास्त्र की एक परम्परा का उल्लेख छन्दःसूत्र (पिङ्गल) के 'यादवप्रकाश' के आरम्भ में प्राप्त होता है, यथा—

छन्दःशास्त्र के सर्वप्रथम आचार्य भगवान् शिव हैं। शिवजी से देवराज इन्द्र को

छन्दोविषयक उपदेश प्राप्त हुआ। इन्द्र से दुश्च्यवन को, दुश्च्यवन से सुरगुरु को, सुरगुरु से माण्डव्य ऋषि को, माण्डव्य से सैतव को, सैतव से यास्क को, यास्क से पिङ्गल को तथा पिङ्गल से सम्पूर्ण विश्व को छन्दःशास्त्र का ज्ञान प्राप्त हुआ। परन्तु इस परम्परा में पिङ्गल के 'छन्दःसूत्र' के अतिरिक्त अन्य किसी आचार्य का छन्दःशास्त्रीय कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता है।

आचार्य पिङ्गल के बाद कवि कालिदास के छन्दोविषयक दो ग्रन्थ प्राप्त होते हैं– श्रुतबोध तथा वृत्तरत्नावली। परन्तु यह कहना अत्यन्तदुष्कर है कि ये वही कालिदास थे जिन्होंने 'रघुवंशम्' की रचना की थी। अधिकांश विद्वानों का मत है कि छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थों के रचयिता कालिदास कोई दूसरे हैं। संस्कृत वाङ्मय में कालिदास के नाम से अन्य कई रचनाएं भी प्राप्त होती है। तत्पश्चात् आठवीं शताब्दी में जनाश्रय ने 'छन्दोविचितिः' ग्यारहवीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्त तिलकम्', हेमचन्द्र ने 'छन्दोऽनुशासनम्', पन्द्रहवीं शताब्दी में केदारभट्ट ने 'वृत्तरत्नाकरः तथा गङ्गादास ने 'छन्दोमञ्जरी' की रचना की। सोलहवीं शताब्दी में दामोदर मित्र ने 'वाणीभूषणम्' और दुःखभञ्जन ने 'वाग्वल्लभः' नामक ग्रन्थ बनाये जिसमें छन्दों का रम्य वर्णन प्राप्त होता है। सत्रहवीं शताब्दी में श्रीकृष्णभट्ट ने 'वृत्तमुक्तावली' नामक एक ग्रन्थ का निर्माण किया जो संस्कृत के वैदिक तथा लौकिक प्रचलित छन्दों के अतिरिक्त अनेक हिन्दी आदि भाषाओं में प्रयुक्त छन्दों का संस्कृतीकरण किया। इस प्रकार छन्द का विषय उत्तरोत्तर अपनी प्रगति में अग्रसर रहा है। आज आधुनिक छन्द संस्कृत में अधिकतर प्रयुक्त हो रहे हैं। दोहा, चतुष्पदी (चौपाई), सवैय्या, गज्जलिका (गजल), सोहर आदि लोकगीत तथा अन्यान्य छन्द की विद्याओं में संस्कृत कविता लिखी जा रही है। अंग्रेजी के सॉनेट तथा मुक्तक छन्द या स्वच्छन्द कविता का विकास भी संस्कृत में आज देखने को प्राप्त होता है। अतः छन्दःशास्त्र के क्षेत्र में एक नवीन अध्याय आज जोड़ा जाना चाहिए जो इन सभी छन्दःशास्त्रीय विधाओं को आत्मसात् कर सके।

छन्द और उनका प्रयोग स्थल

छन्द मुख्य रूपेण दो प्रकार के हैं (i) मात्रिक (ii) वार्णिक छन्द । मात्रिक छन्दों में केवल प्रत्येक चरण की मात्राओं का नियमन किया जाता है। प्रायः सभी छन्दों में चार चरण होते हैं। वैदिक छन्द गायत्री इत्यादि में तीन ही चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में मात्राओं की सङ्ख्या निर्धारित होती है। ऐसे छन्द मात्रिक छन्द कहे जाते हैं। जैसे- आर्या, गीति,

उपगीति आदि। मात्रिक छन्दों की संख्या कम ही है। वार्णिक छन्दों में वर्णों की सङ्ख्या अथवा वर्णो का एक निश्चित गुरु लघु क्रम होता है जिससे ऐसे छन्द निर्मित होते हैं। गुरु लघु के क्रम को सरलतया समझने के लिए छन्दःशास्त्र में आठ गणों की व्यवस्था की गयी है तथा लघु और गुरु ये दो मिलकर दश अवयवों से सम्पूर्ण शब्दराशि व्याप्त है। मगण, भगण, जगण, सगण, नगण, यगण, रगण तथा तगण इन आठ गणों के लिए छन्दःशास्त्र में क्रमशः 'म', 'भ', 'ज', 'स', 'न,' 'य', 'र', और 'त' प्रयुक्त होते हैं। लघु के लिए 'ल' तथा गुरु के लिए 'ग' का प्रयोग किया है। अन्य आचार्यों ने आवश्यकतानुरूप दोनों का प्रयोग किया है। गणों के स्वरूप को जानने हेतु 'यमाताराजभानसलगम्' का प्रयोग करना चाहिए। जिस गण का स्वरूप जानना हो वह अक्षर आदि में रखकर उसके परवर्ती दो वर्णो के स्वरूप रख देने पर उस गण का स्वरूप मालूम हो जाता है। यथा– यगण के स्वरूप-ज्ञान हेतु 'यमाता' (लघु, गुरु, गुरु) शब्द उक्त सूत्र से ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार जिन छन्दों में वर्णों के ऐसे क्रम का चरणों में सन्निवेश होता है उन्हें वर्णिक छन्द कहते हैं जैसे–अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, मालिनी, शिखरिणी, स्रग्धरा इत्यादि। वर्णिक छन्दों की संख्या बहुत अधिक है और अनेक आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में विभिन्न वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया है।

छन्दों के स्थल विशेष पर प्रयोग के सन्दर्भ में आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलकम्' में पर्याप्त विचार प्रस्तुत किये हैं। ग्रन्थ लिखने के समय वृत्तों का विचार अवश्य करना चाहिए। शास्त्र की रचना अनुष्टुप् छन्द के द्वारा उपयुक्त है जिससे एक साधारण व्यक्ति भी शास्त्र के अभिप्राय को जान सके। क्षेमेन्द्र ने लिखा है–

शास्त्रं कुर्यात्प्रयत्नेन प्रसन्नार्थमनुष्टुभा ।
येन सर्वोपकाराय याति सुस्पष्टसेतुताम् ॥

(सुवृत्ततिलक ३/६)

काव्य में रसानुगुण छन्द का विनियोग करना उचित है। काव्य में छन्दः शास्त्र में वर्णित सम्पूर्ण वृत्तों का प्रयोग वर्णना के अनुरूप रखा जा सकता है। धर्मादि का उपदेश देने वाले शास्त्र काव्य में शार्दूलविक्रीडित तथा स्रग्धरा इत्यादि दीर्घ छन्दों का प्रयोग निन्दित है। परन्तु काव्यशास्त्र यथा ध्वन्यालोक इत्यादि में रसानुकूल छन्दों का प्रयोग करना चाहिए। पुराणों की छाया पर रचित उपायमार्ग के निर्देशक तथा उपदेशप्रधान ग्रन्थ अनुष्टुप् छन्द के द्वारा लिखे जाने चाहिए–

पुराणप्रतिविम्बेषु प्रसन्नोपायवर्त्मसु ।
उपदेशप्रधानेषु कुर्यात्सर्वेष्वनुष्टुभम् ॥

(सुवृत्ततिलक ३/९)

अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग सर्गबन्ध काव्य के आदि में, कथा का विस्तार करने तथा उपदेश परक वाक्यों में अत्यन्त प्रशस्त माना गया है। शृङ्गार रस की आलम्बनभूत उदात्त नायिकाओं के रूप-सौन्दर्य के वर्णन तथा वसन्तादि षड्ऋतुओं और उनके अङ्गों के वर्णनमें उपजाति छन्द का प्रयोग करना अधिक श्रेयस्कर है–

शृङ्गारालम्बनोदारनायिकारूप वर्णनम् ।
वसन्तादि तदङ्गञ्च सच्छायमुपजातिभिः ॥

(सुवृत्ततिलक ३/१७)

रथोद्धता वृत्त का प्रयोग चन्द्रोदय आदि उद्दीपनविभावों के सङ्कीर्तन में किया जाता है। सन्धिविग्रह आदि छहगुणों से युक्त नीति का वर्णन वंशस्थ छन्द के द्वारा किया जाना चाहिए। वीर तथा रौद्ररसों के मिश्रण में वसन्ततिलका और सर्गान्त में मालिनी छन्द उसी प्रकार सुशोभित होता है जैसे गीतों के अन्त में द्रुतताल की शोभा होती है–

रथोद्धताविभावेषु भव्या चन्द्रोदयादिषु ।
षाड्गुण्यप्रगुणा नीतिर्वंशस्थेन विराजते ॥
वसन्ततिलकं भाति सङ्करे वीररौद्रयोः ।
कुर्यात्सर्गस्य पर्यन्ते मालिनीं द्रुततालवत् ॥

(सुवृत्ततिलक ३/१८,१९)

किसी विषय के सीमानिर्धारिण में शिखरिणी छन्द मनोहर लगता है। आक्षेप पूर्वक क्रोध से धिक्कारने में तात्पर्यग्राही पृथ्वी छन्द कवियों के लिए प्रशस्त है। इसीप्रकार वर्षा ऋतु, प्रवास और व्यसन के वर्णन में मन्दाक्रान्ता अपनी विचित्र छवि दिखाता है। राजाओं की शौर्यप्रशंसा में शार्दूलविक्रीडित तथा प्रचण्डगति वाले वायुआदि के वर्णन में स्रग्धरा वृत्त कमनीय है–

उपपन्नपरिच्छेदकाले शिखरिणी मता ।

औदार्यरुचिरौचित्यविचारे हरिणी वरा ॥
साक्षेपक्रोधधिक्कारे परं पृथ्वी भरक्षमा ।
प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते ॥
शौर्यस्तवे नृपादीनां शार्दूलक्रीडितं मतम् ।
सावेगपवनादीनां वर्णने स्रग्धरा मता ॥

(सुवृत्ततिलक ३/२०-२२)

रसादिकों में दोधक, तोटक तथा नर्कुट छन्दों का प्रयोग उचित नहीं होता है। ये छन्द मुक्तक के रूप में प्रयुक्त होकर कविता को अलङ्कृत करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य छोटे-बड़े छन्द भी प्रयोग की दृष्टि से महत्त्वहीन हैं। ऐसे छन्दों का प्रयोग उपर्युक्त छन्दों के पादाक्षरानुसार सादृश्य का निर्धारण करके तत्तद्विषयों में करना चाहिए अथवा मुक्तक के रूप में किया जा सकता है। यथा आर्या छन्द का प्रयोग मुक्तक में भावगाम्भीर्य को द्योतित करता है। वृत्तों के अभ्यास में जिस कवि को जो वृत्त अधिक अनुकूल लगे उसी में अपनी रचना प्रवृत्त करने से कीर्त्ति मिलती है। परन्तु क्षेमेन्द्र द्वारा निर्दिष्ट वृत्तविनियोग का उल्लङ्घन कदाचित् काव्य में परिपक्वता नहीं ला पाता है क्योंकि स्वेच्छाचारिता से अस्थान पर प्रवृत्त वृत्त गले में धारण की गयी करधनी के समान कवि की अज्ञता को प्रकट करता है—

वृत्तरत्नावली कामादस्थाने विनिवेशिता ।
कथयत्यज्ञतामेव मेखलेव गले धृता ॥

(सुवृत्ततिलक ३/१३)

कतिपय महाकवि जिन वृत्तों के प्रणयन में सिद्धहस्त रहे हैं। क्षेमेन्द्र ने उनकी प्रशंसा अवश्य की है। 'अनुष्टुप् सततासक्ता साभिनन्दस्य नन्दिनी' कह कर अनुष्टुप् छन्द के प्रयोक्ता कवि अभिनन्द का स्मरण यहाँ समुचित ही है जिन्होंने 'रामचरितम्' काव्य की अनुष्टुप् घटी में भावों का समुद्र उड़ेल दिया है। 'जाम्बवतीजयम्' काव्य के रचयिता पाणिनि ने उपजाति छन्द मे अपनी विशेष योग्यता प्रदर्शित की है—

स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः ।

(सुवृत्ततिलक ३/३०)

'किरातार्जुनीयम्' के प्रणेता महाकवि भारवि वंशस्थ छन्द में प्रवीण हैं। भारवि को आतपत्र की उपाधि वंशस्थ वृत्त के द्वारा ही अधिगत हुई है–

वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता ।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता ॥

(सुवृत्ततिलक ३/३१)

'हरविजयम्' काव्य के रचयिता राजानक रत्नाकर के विषय में कहा है कि मधुऋतु में तिल वृक्ष पर आरूढ और गाढाभिलिङ्गित लता कलियों से युक्त होकर जैसे वन में सुशोभित होती है वैसे वह वसन्ततिलका कवि के मुख में वाक्प्रौढित्व को प्राप्त हो रही है–

वसन्ततिलकारूढा बाग्वल्ली गाढसङ्गिनी ।
रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने ॥

(सुवृत्ततिलक ३/३२)

इसी प्रकार भवभूति की शिखरिणी अवाधगति से बहने वाली नदी है– **"भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी। रुचिरा घन सन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति।"** (सुवृत्ततिलक ३/३३) भवभूति की शिखरिणी उनके नाटकों में उसी प्रकार नृत्य करती है जैसे बादलों के सम्पर्क में सुन्दरी मयूरी स्वतन्त्रतापूर्वक नाचने लगती है।

काबुल की श्रेष्ठ घोड़ी जैसे शक्तिमान् और उत्तम घोड़े के पास जाकर वशीभूत होकर हिनहिनाने लगती है वैसे ही मन्दाक्रान्ता छन्द महाकवि कालिदास के स्वयं वशवर्ती होकर मुखरित हो उठता है। जैसा कि क्षेमेन्द्र लिखते हैं–

सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति ।
सदश्वदमकस्येव कम्बोजतुरगाङ्गना ॥

(सुवृत्ततिलक ३/३४)

राजशेखर कवि शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग करने में बड़े निपुण हैं। क्षेमेन्द्र ने **'शार्दूलक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः'** कहकर इसकी पुष्टि की है। इस प्रकार छन्दः प्रयोग का निर्देश क्षेमेन्द्र ने अत्यन्त ललित ढंग से किया है। परन्तु वृत्तों का यह विनियोग

उन कवियों के लिए है जिनकी वाणी वश्य है। विल्हण के शब्दों में "सरस्वती यद् वदनेषु नित्यमाभाति वीणामिव वादयन्ती" अर्थात् जिनके मुख में भगवती सरस्वती स्वयं वीणा बजाती रहती है, वही कवि वृत्त विनियोग के अधिकारी हैं। अवश्यवाक् कवियों के लिए यह नियम नहीं हैं।

यद्यपि उपर्युक्त प्रकार से छन्दों का प्रयोग करना चाहिए ऐसा निर्देश क्षेमेन्द्र ने किया है। परन्तु महाकवियों के काव्यों में इस वृत्तविनियोग का उल्लङ्घन दिखायी देता है। वृत्तानुरूप विषयों का चयन न करके भी वर्णनाचातुरी की कमनीयता कवियों में देखी जा सकती है। अतः कवि की प्रतिभा से कोई भी छन्द किसी भी विषय के वर्णन में समर्थ हो सकता है। परन्तु क्षेमेन्द्र के बतलाये हुए मार्ग का अनुसरण करने से काव्य चारुत्व में और वृद्धि हो सकती है। यह बात अवश्य है कि किसी एक दो छन्दों में ही कवि को सिद्धि मिलती है, जिसमें उसकी प्रवीणता का गान निहित होता है।

छन्दः शास्त्र के ग्रन्थ

छन्दःशास्त्र की प्राचीन परम्परा का अवलोकन करने से अनेक वृत्त विषयक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। 'छन्दः' शब्द वेद के लिए प्रयुक्त होता हे, इसे पहले बतलाया जा चुका है। अतः छन्दःशास्त्र की प्रवृत्ति वैदिक काल से ही हुई। अनुष्टुप्, गायत्री, त्रिष्टुप्, वृहती, शक्वरी इत्यादि वैदिक छन्द हैं जिनका नाम और प्रयोग (विनियोग) विना जाने वेद पाठ में प्रवृत्त व्यक्ति पापीयान् हो जाता है। अतः छन्द की स्वीकृति वेदाङ्ग के रूप में हुई और 'छन्दःपादौ तु वेदस्य' कहकर उसे अत्यधिक प्रतिष्ठित किया गया । तदनन्तर छन्दः सम्बन्धी विषयों के अध्ययन हेतु वैदिक छन्दःशास्त्र के ग्रन्थ रचे गये और कालान्तर में आदि कवि वाल्मीकि के द्वारा क्रौञ्चवध के प्रसङ्ग में अनुष्टुप् का साक्षात्कार हुआ। वेदों के वृत्तानुसार अन्य लौकिक छन्द अवतरित हुए। सङ्गीतशास्त्र के विकास के साथ-साथ लौकिक छन्द अवतरित हुए। सङ्गीतशास्त्र के विकास के साथ-साथ लौकिक छन्दों और ध्रुवपदों आदि का विस्तार हुआ, जिसके लिए छन्दःशास्त्र के ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। इस प्रकार यहाँ छन्दःशास्त्र के ग्रन्थों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) वैदिक छन्दःशास्त्र के ग्रन्थ।

(ख) लौकिक छन्दःशास्त्र के ग्रन्थ।

वैदिक छन्दःशास्त्र के ग्रन्थ

१. **साङ्ख्यायन स्रौतसूत्र**– सर्वप्रथम छन्द अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती, गायत्री आदि की विश्लेषणात्मक चर्चा साङ्ख्यायन श्रौतसूत्र में प्राप्त होती है। वैदिक छन्दों में गणों, मात्राओं का विचार न करके केवल पादाक्षरों का ही विवेचन किया जाता है। कहीं-कहीं पाद में एकाक्षर न्यून होने पर भी उसे छन्द की मान्यता दे दी जाती है ऐसा लौकिक छन्दों में नहीं होता है।

२. **निदानसूत्र**– निदानसूत्र के दश अध्यायों में वैदिक छन्दों का बृहद् निरूपण किया गया है। यह विवेचन स्पष्ट तथा विशद है।

३. **ऋग्वेद तथा यजुर्वेद अनुक्रमणी**– कात्यायन-प्रणीत ऋग्वेद तथा यजुर्वेद की अनुक्रमणी के खण्डों में भी वैदिक छन्दों का विचार किया गया है। इस विषय को 'वेदाङ्ग छन्दस्' नाम से अभिहित किया जाता है।

४. **ऋक्प्रातिशाख्य**– ऋक्प्रातिशाख्य में भी वैदिक छन्दों का निरूपण है।

५. **पिङ्गलच्छन्दः सूत्र**– इसमें वैदिक तथा लौकिक दोनों छन्दों का निरूपण है। इसके रचयिता पिङ्गल नाग माने जाते हैं। यह ई० पू० ५०० का ग्रन्थ स्वीकार किया जाता है।

लौकिक छन्दःशास्त्र के ग्रन्थ

१. **पिङ्गलच्छन्दःसूत्र**– आदि कवि वाल्मीकि से लेकर पिङ्गल नाग पर्यन्त लौकिक छन्द स्वच्छन्दता से विकसित होता रहा। उस पर कोई शास्त्रीय बन्धन नहीं था। पिङ्गल नाग ने ई०पू० ५०० में पिङ्गलछन्दःसूत्र की रचना करके छन्दों पर शास्त्रीय अङ्कुश लगाया। सूत्र शैली में इन्होंने सरलतया वैदिक तथा लौकिक छन्दों का निरूपण किया है। गुरु के लिए 'ग', लघु के लिए 'ल' की व्यवस्था की गयी है। 'नाट्यशास्त्र के छन्दोविषयक चौहदवें, पन्द्रहवें परिच्छेदों से पिङ्गलसूत्र पूर्ववर्ती है। इसीप्रकार अग्निपुराण में वर्णित छन्दःशास्त्र (अध्याय ३२८-३४) आचार्य पिङ्गल से ग्रहण किया गया है। गणों की व्यवस्था सर्वप्रथम कदाचित् पिङ्गल ने की है, इसके लिए गणों के आदि अक्षर यथा मगण के लिए 'म', नगण के लिए न का प्रयोग किया है। इसी आधार/पर परवर्ती आचार्यों ने गणों का प्रयोग किया । निश्चित रूपेण पिङ्गलच्छन्दः सूत्र से प्राचीन छन्दोविषयक ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। पिङ्गल के नाम से एक

'प्राकृत पिङ्गल' ग्रन्थ मिलता है जो बहुत बाद का है। 'पिङ्गलसूत्र' पर 'हलायुधवृत्ति' भी प्राप्त होती है।

२. **श्रुतबोध**– यह ग्रन्थ कालिदास द्वारा रचित कहा जाता है। परन्तु यह रघुवंशकार कालिदास की कृति नहीं है। ई० पू० प्रथम शताब्दी तक इनका काल माना जा सकता है ऐसा कुछ विद्वानों का मत है इस ग्रन्थ में अनुष्टुप्, आर्या से लेकर स्रग्धरा पर्यन्त ४० प्रसिद्ध छन्दों का निरूपण है। लक्षण उसी छन्द में दिये गये है, जिससे लक्षण और उदाहरण एक ही हो जाता है। लघु-गुरु की अक्षर सङ्ख्या क्रम से सभी छन्द निरूपित हैं गणों की व्यवस्था नहीं है। अतः यह ग्रन्थ पिङ्गल से प्राचीन हो सकता है। परन्तु इसका कोई आधार दृष्टिगत नहीं होता। कहीं-कहीं इस ग्रन्थ के रचयिता वररुचि भी कहे गये हैं। 'ज्योतिष' में 'उत्तरकालामृतम्' नामक ग्रन्थ भी कालिदास प्रणीत माना जाता है। कदाचित् वही कालिदास श्रुतबोध ग्रन्थ के रचयिता भी हो सकते हैं। परन्तु यह ग्रन्थ परवर्ती है। कुछ भी हो श्रुतबोध बड़ा लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है और संस्कृत में 'सुवोधिनी' आदि कई टीकाएं इस पर प्राप्त होती हैं। छोटी कक्षाओंमें अध्यापनार्थ उपयुक्त होने से इस लघु-काय ग्रन्थ में अनेक पाठान्तर प्राप्त होते हैं। मूल-पाठ में शृङ्गारिक पदों को परिवर्त्तित करके पण्डितों ने मनोऽनुकूल पदों का चयन इसमें यत्र तत्र प्रस्तुत किया है। अतः मूलपाठ को कदाचित् ढूढ़ पाना कठिन हो गया है। इसमें ४३ श्लोक प्राप्त होते हैं। कदाचित् इस ग्रन्थ की रचना ग्यारहवीं शताब्दी में हुई होगी।

३. **वृत्तरत्नावली**– यह कालिदास-प्रणीत कही जाती है। श्रुतबोध के समान इसका भी समय निश्चित नहीं है। छन्दोविवरण की दृष्टि से महत्त्व पूर्ण है। यह ग्रन्थ दशम शताब्दी के बाद का है।

४. **छन्दोविचिति**– आठवीं शताब्दी में जलाश्रय ने छन्दोविचिति नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में उदाहरण के पद्य तत्तच्छन्दों के नामों से विभूषित हैं।

५. **सुवृत्ततिलक**– आचार्य क्षेमेन्द्र ने ग्यारहवीं शताब्दी में इस ग्रन्थ की रचना की। इसके प्रथम विन्यास में अनुष्टुप् छन्द के द्वारा २७ प्रसिद्ध छन्दों के लक्षण दिये गये हैं उदाहरण स्वरूप पद्य भी क्षेमेन्द्र के द्वारा ही रचित हैं जिनमें तत्तत् छन्दों का नाम आ गया है। ग्रन्थ के द्वितीय विन्यास में छन्दों के गुण दोषों का प्रदर्शन किया गया है। तृतीयविन्यास में वृत्तविनियोग की चर्चा है। छन्दःशास्त्र पर काव्यशास्त्रीय दृष्टि का सम्यक् विवेचन इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है।

६. छन्दोऽनुशासन– ग्यारहवीं शताब्दी में आचार्य हेमचन्द्र ने 'छन्दोऽनुशासन' नामक ग्रन्थ लिखा है। इसमें छन्दों का अच्छा विवरण उपलब्ध है।

७. वृत्तरत्नाकर– पन्द्रहवीं शताब्दी में केदारभट्ट ने वृत्तरत्नाकर नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा, जिसमें लगभग १३६ वृत्तों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ में वृत्त के दो चरण अथवा चरण भिन्न होने पर चारों चरण में तत्तद् छन्दों में ही वृत्तों का लक्षण दिया गया है जिससे लक्षण और उदाहरण एक ही है। एक चरणात्मक लक्षणोदाहरण होने से यह ग्रन्थ बहुत उपादेय रहा है। सूत्रसम्मित शैली न होते हुए भी संक्षिप्तता है। इस ग्रन्थ पर कई टीकाएं लिखी गयी हैं जिनमें 'नारायण भट्टी' तथा 'पञ्चिका' महत्त्वपूर्ण हैं।

८. छन्दोमञ्जरी– गङ्गादासप्रणीता छन्दोमञ्जरी पन्द्रहवीं शताब्दी में लिखी गयी। वृत्तरत्नाकर की शैली का ही यहाँ भी प्रयोग किया गया है। कई लक्षण तो वृत्तरत्नाकर और छन्दो मञ्जरी में अक्षरशः मिलते हैं। यह भी लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है।

९. वाणीभूषण– दामोदर मिश्र द्वारा रचित १६वीं शताब्दी का छन्दो विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसकी हस्तलिखित प्रतियों की बहुलता से उत्तर भारत में इसकी लोकप्रियता प्रख्यापित होती है।

१०. वाग्वल्लभ– सोलहवीं शताब्दी का छन्दो विषयक यह ग्रन्थ रम्य है। इसके रचयिता दुःखभञ्जन कवि हैं।

११. वृत्तमुक्तावली– गोतमगोत्रीय तैलङ्गवंश में उत्पन्न श्रीकृष्ण भट्ट इस ग्रन्थ के रचयिता हैं। इनका समय १६६९ ई० से१७४४ ई० के मध्य स्वीकृत किया गया है। कवि ने वैदिक तथा लौकिक दोनों छन्दो का सविस्तार निरूपण किया है। इस ग्रन्थ में तीन गुम्फ हैं। प्रथम गुम्फ में वैदिक तथा शेष दो में लौकिक छन्द वर्णित हैं। छन्दों का लक्षण उसी चतुश्चरणात्मक छन्द में किया गया है तथा स्वयं रचित पद्य उदाहरण स्वरूप भी प्रदर्शित किये गये हैं। छन्दो के लक्षण कहीं वृत्तरत्नाकर की गणात्मक शैली से और कहीं श्रुतबोध की लघु-गुरु अक्षरात्मक शैली में प्रस्तुत किये गये है। संस्कृत के प्रसिद्ध छन्दों के अतिरिक्त अनेक हिन्दी भाषा के छन्दों का संस्कृत में लक्षण तथा उदाहरण इस ग्रन्थ की अपनी विशेषता है।

इसके अतिरिक्त लौकिक छन्दों का विवरण 'नाट्यशास्त्र' अग्निपुराण आदि ग्रन्थों में मिलता है। वराहमिहिर ने बृहत्संहिता के १०४ अध्याय में छन्दों के साथ ग्रहों की गतियों

का वर्णन किया है जिसमें छन्दों के नाम यथास्थान आये हैं। आचार्य दण्डी ने भी छन्दों पर किसी ग्रन्थ की रचना की थी। भामह के छन्दोविषयक मत को 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की राघवभट्टकृत टीका में उद्धृत किया गया है जिससे उनके द्वारा प्रणीत किसी छन्दःशास्त्र विषयक ग्रन्थ का उद्घाटन होता है। इस प्रकार छन्दःशास्त्र पर पर्याप्त वाङ्मय समृद्ध है ऐसा कहना असङ्गत नहीं होगा।

श्रुतबोध का प्रस्तुत सम्पादित संस्करण

यद्यपि श्रुतबोध के कई संस्करण प्रकाशित हैं तथापि यह सम्पादित संस्करण मूलपाठ को उद्धृत करके कालान्तर में उपलब्ध अन्य पाठान्तरों का सम्यक् उल्लेख करता है। इसके अतिरिक्त 'श्रुति' संस्कृत तथा 'स्मृति' हिन्दी व्याख्या के साथ 'श्रुतबोध' का विषय सरलतया छात्रों को हृदयङ्गम हो सकेगा। संस्कृत तथा हिन्दी दोनों टीकाओं में पिङ्गलसूत्र, वृत्तरत्नाकर, छन्दोमञ्जरी, सुवृत्त तिलक तथा वृत्तमुक्तावली के भी तत्तद्छन्दोविषयक लक्षण उक्त किये गये हैं, जो पाठक विद्यार्थियो के लिए अत्युपयोगी सिद्ध होंगे। प्रस्तुत संस्करण मूल श्रुतबोध के पठन-पाठन की एक नयी दिशा प्रदान करेगा, ऐसा सम्पादक का मत है।

कालिदासप्रणीतः

श्रुतबोधः

'श्रुति' संस्कृतटीकोपेतः

ग्रन्थारम्भः

छन्दसां लक्षणं येन श्रुतमात्रेण बुध्यते ।
तमहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रुतबोधमविस्तरम् ।।१।।

श्रुतिः—

श्रीवृत्तमाधवोद्याने मात्रार्णमञ्जरीभरे ।
'श्रुतबोध' रसालेऽस्मिंश् 'श्रुति' टीका पिकायते ।।

येन शास्त्रग्रन्थेन श्रुतमात्रेण केवलं श्रवणेनैव छन्दसां मात्रिकवर्णिकाऽऽर्यानुष्टुप्प्रभृतीनां लक्षणं स्वरूपं बुध्यते ज्ञायते कोमलमतिभिश्छात्रैस्तमेतादृशं छन्दोबोधजनकं श्रुतबोध नामधेयं छन्दःशास्त्रग्रन्थम् अहं कालिदासः प्रसिद्धकालिदासादपरः कश्चित् कविः सम्प्रवक्ष्यामि सम्यग् वर्णयिष्यामि। अत्रानुष्टुभ् वृत्तम्। तदुक्तं तल्लक्षणं यथा - **श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।१।।**

१. अन्वय— येन श्रुतमात्रेण छन्दसां लक्षणं बुध्यते। अहं तम् अविस्तरं श्रुतबोधं सम्प्रवक्ष्यामि ।।१।।

'स्मृति' व्याख्या— ग्रन्थकार बालप्रबोधहेतु श्रुतबोध नामक ग्रन्थ के सारल्य की चर्चा करते हुए कहते हैं कि जिस ग्रन्थ के श्रवण मात्र से अनुष्टुप्, आर्या आदि छन्दों का सम्यक् ज्ञान शिशुओं को प्राप्त हो जाता है, उस 'श्रुतबोध' नामक छन्दःशास्त्र के संक्षिप्त ग्रन्थ का प्रणयन मैं अर्थात् कालिदास करूँगा। कालिदास 'श्रुतबोध' ग्रन्थ का कथन करेंगे।

यहाँ कवि कालिदास ने ग्रन्थारम्भ में मङ्गलाचरण की वस्तुनिर्देशात्मक पद्धति का आश्रय लिया है। 'छन्दसां' पद के आद्युल्लेख से मङ्गलाचरण की प्रवृत्ति समझनी चाहिए क्योंकि 'छन्दः' शब्द 'वेद' का पर्याय होने से मङ्गलवाची है, जैसा कि वृत्तरत्नाकर (पृ० ७) की नारायण भट्टी टीका में भामह का एक श्लोक उद्धृत किया गया है—

"देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः ।
ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा ।।"

अतः उक्तकथन से कवि का ग्रन्थादि में मङ्गलाचरण सिद्ध होता है। शिष्टाचार की सम्प्राप्ति तथा प्रत्यूहों के विनाश-हेतु मङ्गलाचरण भारतीय-मनीषा की परम्परा रही है।

ग्रन्थारम्भ में अनुबन्धचतुष्ट्य का निरूपण अवश्य होना चाहिए—

"सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते ।
शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ।।"

यहाँ उक्त अनुबन्ध चतुष्ट्य में विषय-छन्दों का लक्षण, प्रयोजन-श्रवण मात्र से बालकों को बोध कराना, अधिकारी-छन्दः शास्त्र के जिज्ञासु छात्र तथा सम्बन्ध-विषय और ग्रन्थ में प्रतिपाद्य-प्रतिपादक भाव है।

कवि ने यहाँ अनुष्टुप् (श्लोक) वृत्त का प्रयोग किया है, जिसका लक्षण इसी ग्रन्थ में अनुष्टुप् छन्द की विवेचना में प्रस्तुत किया जायगा।।१।।

अथ गुरुलक्षणम्

संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसम्मिश्रम् ।
विज्ञेयमक्षरं गुरु पादान्तस्थं विकल्पेन ।।२।।

श्रुतिः— संयुक्ताद्यं संयुक्तवर्णादादिवर्णं दीर्घं द्विमात्रिकं सानुस्वारमनुस्वारयुक्तं विसर्गसम्मिश्रं विसर्गसहितमक्षरं गुरुसञ्ज्ञं कथ्यते। पादान्तस्थं चरणान्तगतमक्षरं विकल्पेन गुरुसञ्ज्ञकं भवति। यथोक्तं पाणिनिनाऽपि- 'संयोगे गुरु' १/४/११।। 'दीर्घं च' १/४/१२।। पिङ्गलसूत्रेऽपि निगदितं— "दीर्घं संयोगपरं तथा प्लुतं व्यञ्जनान्तमूष्मान्तम्। सानुस्वारं च गुरुं क्वचिदवसानेऽपि लघ्वन्तम् (पिं०सू० १-४)" गुरुचिह्नं वक्रं (ऽ) भवति लघुचिह्नं व सरलं (।) प्रयुज्यते यथोक्तं केदारभट्टेन-

सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्तपरश्च यः। वा पादान्ते त्वसौ ग्वक्रो ज्ञेयोऽन्योमात्रिको लृजुः।। (वृ०र० १/९) अस्मिन् पद्ये जातिरार्या नाम। तल्लक्षणमाह- "यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।।२।।

२. अन्वय— संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसम्मिश्रम् अक्षरं गुरु विकल्पेन (च) पादान्तस्थम् (अक्षरं गुरु) विज्ञेयम् ।।२।।

'स्मृति' व्याख्या– संयुक्तवर्ण का अक्षर, दीर्घ (द्विमात्रिक) वर्ण, अनुस्वारयुक्त, तथा विसर्ग युक्त वर्ण को गुरु समझना चाहिए। पाद के अन्त में स्थित लघुवर्ण भी विकल्प से गुरु की सञ्ज्ञा को प्राप्त होता है। लघु-गुरु ये दोनों सञ्ज्ञाएं इसी रूप में व्याकरण शास्त्र में भी प्रयुक्त हुई हैं। आचार्य पाणिनि ने ''ह्रस्वं लघु''– १/४/१०, 'संयोगे गुरु' १/४/११, तथा 'दीर्घं च' १/४/१२ सूत्र लिखकर उक्त सञ्ज्ञाओं को परिभाषित किया है। छन्दःशास्त्र में यही लघु-गुरु सञ्ज्ञाएं आचार्य पिङ्गल तथा अन्य छन्दःशास्त्रविद् आचार्यों ने स्वीकार कीं। तीन प्रकार के स्वरों में ह्रस्व को लघु तथा दीर्घ को गुरु कहा जाता है। एकमात्रिक स्वर लघु (ह्रस्व) द्विमात्रिक स्वर गुरु (दीर्घ) तथा त्रिमात्रिक स्वर को प्लुत कहते हैं–

'एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनञ्चार्द्धमात्रकम् ॥'

लौकिक छन्दों में प्लुत स्वर का प्रयोग नहीं किया जाता है और न व्यञ्जन की आधी मात्रा की ही गणना की जाती है। परन्तु पिङ्गलाचार्य ने प्लुत को गुरु माना है (द्रष्टव्य-पिङ्गलसूत्र-१-४) क्योंकि आचार्य पिङ्गल ने वैदिक छन्दों के भी लक्षण दिये हैं। गुरु के लिए वक्र रेखा (ऽ) तथा लघु के लिए सरलरेखा (।) का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार गुरु के लिए 'ग' वर्ण अथवा 'ग्' वर्ण तथा लघु के लिए 'ल' अथवा 'ल्' वर्ण प्रयुक्त होता है–

''वक्ररेखा गुरोश्चिह्नं सरला च लघोस्तथा ।
गुरुरेको गकारस्तु लकारो लघुरेककः ॥'
–(छन्दोमञ्जरी)

गुरु-लघु को उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया जाता है–

अं –– लघु (ह्रस्व होने के कारण)
आं –– गुरु (दीर्घ होने के कारण)
अँस्ति –– गुरु (पर में 'स' संयुक्त वर्ण होने के कारण)
अँश –– गुरु (सानुस्वार होने के कारण)
अः –– गुरु (सविसर्ग होने के कारण)

''मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं 'तनोतिँ।' (पादान्त में स्थित लघु की गुरु सञ्ज्ञा –अभिज्ञानशाकुन्तलकालिदास)

इस प्रकार यहाँ गुरु लघु का दिग्दर्शन कराया गया, जो बालकों के लिए बोधगम्य हो सकेगा।

प्रस्तुत श्लोक में आर्या छन्द का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थ-पौनरुक्त्य के भय से आर्या का लक्षण नहीं दिया गया है। इसे इसी ग्रन्थ में आगे देखना चाहिए ।।२।।

अथ गणलक्षणमाह

आदिमध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम् ।
यरता लाघवं यान्ति मनौ तु गुरुलाघवम् ।।३।।

श्रुति– अत्र भगणादिगणस्वरूपं कालिदासो व्याचष्टे। भजसाः भगण-जगणसगणा आदिमध्यावसानेषु गौरवं गुरुतां यान्ति व्रजन्ति। भगणः आदौ जगणो मध्ये सगणश्चाऽन्ते गुरुत्वं निदधतीत्यभिप्रायः। यरताः यगण आदौ रगणो मध्ये तगणश्चाऽवसाने लाघवं लघुत्वं धारयन्ति। मनौ मगणः सर्वत्र गुरुत्वं नगणश्च सर्वत्र लघुतां धत्ते। अपि चोक्तं **छन्दोमञ्जर्याम्– "मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः ।।"** भगणः (ऽ।।), जगणः (।ऽ।), सगणः (।।ऽ), यगणः (।ऽऽ), रगणः (ऽ।ऽ), तगणः (ऽऽ।), मगणः (ऽऽऽ), नगणश्च (।।।) स्वाद्यक्षरेणाऽपि ज्ञायन्ते यथा 'भ' इति कथनेन भगण इति। एतेषां गणानां देवताफलादीनामपि समुल्लेखः समुपलभ्यते। तद्यथा–**'मोभूमिस्त्रिगुरुः श्रियं दिशति यो वृद्धिं जलं चादिलो। रोऽग्निर्मध्यलघुविनाशमनिलो देशाटनं सोऽन्त्यगः। तो व्योमान्तलघुर्धनापहरणं जोऽर्को रुजं मध्यगो। भश्चन्द्रो यश उज्ज्वलं मुखगुरुर्नो नाक आयुस्त्रिलः'**।। इति। तथा च- **'मनौ मित्रे भयौ भृत्यावुदासीनौ जतौ स्मृतौ। रसावरी नीचसञ्ज्ञो द्वौ द्वावेतौ मनीषिभिः।।'- (वृत्तरत्नाकरे-नारायणभट्टीटीका- पृ० ५)** ग्रन्थान्तरेषु गणयोगादन्यफलानि निगदितानि विस्तरभियानोऽत्रोदितानि। वर्णिकवृत्तेषु गणानां योगव्यवस्थायास्तत्तच्छन्दःसु नियतत्वान्मात्रिकवृत्तेष्वेव गणयोगफलावाप्तिश्चिन्त्या। देवतादिवाचके शब्देऽक्षरपरिशुद्धे च गणाक्षरयोर्दोषाभाव उक्त इत्यलं भूयसा प्रसङ्गेनेति।

अन्वय– भजसा आदिमध्याक्सानेषु गौरवं पान्ति। परता (आदिमध्यावसातेषु) लाघवं पान्ति, मनौ तु गुरुलाघवं (गतौ)।

'स्मृति' व्याख्या– भगण का प्रथम अक्षर गुरु, जगण का मध्य अक्षर तथा सगण का अन्तिम अक्षर गुरु होता है। शेष अक्षर लघु रहते हैं। एक गण में तीन अक्षरों की व्यवस्था रहती है। इसी प्रकार यगण का प्रथम अक्षर, रगण का मध्य अक्षर तथा तगण का अन्त्य अक्षर लघु होता है। शेष अक्षर गुरु होते हैं। मगण के तीनों अक्षर गुरु तथा नगण के तीनों अक्षर लघु होते हैं।।३।।

तीन अक्षरों को लघु-गुरु के क्रम से या उलट कर जैसे भी रखा जाय आठ गण ही बनते हैं। छन्दः कौमुदी में इनका उल्लेख इस प्रकार किया है–

मगणो यगणश्चैव रगणः सगणस्तथा ।
तगणो जगणश्चैव भगणो नगणस्तथा ॥
गुरुर्लघुश्च दशभिरेभिः सर्वमिहाक्षरैः ।
सुव्याप्तं भुवनं भाति वामनेनेव विष्णुना ॥
–(छन्दःकौमुदी पृ० २)

अर्थात् मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण तथा नगण और गुरु, लघु इन दश अक्षरों के द्वारा सम्पूर्ण भुवन उसी तरह से व्याप्त है जैसे वामनावतार में विष्णु से त्रैलोक्य आप्लावित हो गया था।

उपर्युक्त गणों का स्वरूप जानने के लिए "यमाताराजभानसलगम्" ऐसे निरर्थक शब्द से गणों के आद्यक्षर में परवर्ती दो अक्षरों का स्वरूप मिला देने से तत्तद् गणों का सुगमता से बोध हो जाता है। यथा–

शब्द		गण	स्वरुप
यमाता	——	यगण	ISS
मातारा	——	मगण	SSS
ताराज	——	तगण	SSI
राजभा	——	रगण	SIS
जभान	——	जगण	ISI
भानस	——	भगण	SII
नसल	——	नगण	III
सलगम्	——	सगण	IIS
ल	——	लघु	I
गम्	——	गुरु	S

वर्णिक छन्दों में इन्हीं गणों का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक छन्द में गणों की व्यवस्था भिन्न-भिन्न होती है।

प्राचीन आचार्यों ने गणों के देवता, फल तथा शत्रु मित्रादि का भी समुल्लेख किया है। आधोलिखित कोष्ठक में इसका विवरण देखना चाहिए–

अथ गणदेवतादिचक्रम्

गणनाम	मगण	यगण	रगण	सगण	तगण	जगण	भगण	नगण
स्वरूप	SSS	ISS	SIS	IIS	SSI	ISI	SII	III
फल	श्री	वृद्धि	विनाश	भ्रमण	धननाश	रोग	सुकीर्ति	आयु
देवता	भूमि	जल	अग्नि	वायु	आकाश	सूर्य	चन्द्र	स्वर्ग
मित्र शत्वादि-सञ्ज्ञा	मित्र	भृत्य	शत्रु	शत्रु	उदासीन	उदासीन	भृत्य	मित्र

वृत्तों में मित्र के बाद मित्र, भृत्य के बाद भृत्य अथवा मित्र के बाद शत्रु आदि गण के आने पर फल की चर्चा की गयी है। परन्तु वह छात्रोपयोगी न होने के कारण यहाँ लिखी नहीं गयी है। प्रबन्ध अथवा मुक्तक काव्य के आदि में शुभ गण होना चाहिए जिससे रचयिता तथा पाठक को शुभ फल की प्राप्ति होती है। इन गण युग के फल का विचार केवल मात्रिक छन्द (अनुष्टुप्, आर्या) में किया जाता है। वर्णिक छन्दों में तो गणों की युग्मता की व्यवस्था नियत होती है। देवतावाचक तथा मङ्गलवाची शब्दों के आदि में रखने पर अथवा उत्तम अक्षर (अकारादि) का आदि प्रयोग करने पर गणदोष समाप्त हो जाता है।

यति– श्रुतबोधकार ने यद्यपि यति की पृथक् परिभाषा नहीं की है परन्तु छात्रोपयोगी होने से यति आदि की चर्चा करना यहाँ अनुपयुक्त नहीं होगा। प्रत्येक छन्द में चार भाग होते हैं, (गायत्री आदि वैदिक छन्दों में तीन भाग ही होते हैं उन्हें छोड़कर) प्रत्येक भाग पाद या चरण के नाम से जाना जाता है। पाद के अन्त में पाठक को किञ्चित् रुकना पड़ता है, इसी विराम को यति की सञ्ज्ञा प्राप्त है– "ज्ञेयः पादश्चतुर्थांशो यतिर्विच्छेदसञ्ज्ञितः।"

– (वृत्तरत्नाकर १/१२)

सर्वत्र पादान्त में यति का प्रयोग होता है, श्लोकार्द्ध में भी यति होती है। समुद्रादि पद प्रयुक्त होने पर पद के अन्त में यति लगानी चाहिए चाहे वहाँ विभक्ति व्यक्त हो रही हो अथवा अव्यक्त हो, जैसा कि उल्लेख आया है–

यतिः सर्वत्र पादान्ते श्लोकार्धे तु विशेषतः ।
समुद्रादिपदान्ते च व्यक्ताव्यक्तविभक्तिके ॥

–(वृत्तरत्नाकरटीका, वृ० १४)

छन्दःशास्त्र 'यति' पाठक को विश्राम देने तथा गाने आदि में विराम का कार्य करती है। जिससे छन्द में लयात्मकता भी लायी जा सकती है।

छन्दों के प्रकार

प्रायःछन्द तीन प्रकार के हैं—

१. समवृत्त
२. अर्द्धसमवृत्त
३. विषमवृत्त

१. समवृत्त— जिस छन्द में चारों चरण समान मात्रा अथवा वर्णों वाले होते हैं, उसे समवृत्त कहा जाता है—

अङ्घ्रयो यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः ।
तच्छन्दः शास्त्रतत्त्वज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते ॥

—(वृत्तरत्नाकर १/१४)

उदाहरणार्थ— अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित आदि।

२. अर्द्धसमवृत्त— जिस वृत्त में पहला तथा तीसरा पाद समान हो, एतद्भिन्न दूसरा और चौथा चरण भी समान अक्षर या मात्रावाला हो तो इसे अर्द्धसमवृत्त कहेंगे—

प्रथमाङ्घ्रिसमो यस्य तृतीयश्चरणो भवेत् ।
द्वितीयस्तुर्यवद् वृत्तं तदर्धसममुच्यते ॥

—(वृत्तरत्नाकर १/१५)

उदाहरण के लिए— पुष्पिताग्रावृत्त, ललिता, हरिणप्लुता आदि।

३. विषमवृत्त— जिस छन्द में चारो चरण परस्पर भिन्न लक्षण वाले हों, उसे विषम वृत्त की सञ्ज्ञा प्राप्त है—

यस्य पादचतुष्केऽपि लक्ष्मभिन्नं परस्परम् ।
तदाहुर्विषमं वृत्तं छन्दःशास्त्रविशारदाः ॥

—(वृत्तरत्नाकर १/१६)

विषम वृत्तों में पीड, कलिका, लवली तथा अमृतधारा आदि अप्रसिद्ध छन्दों की गणना की गयी है।

अथाऽऽर्यावृत्तमाह

यस्याः प्रथमे[1] पादे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।।४।।

श्रुतिः– 'यस्या' इति वृत्तमाहाऽऽर्यानाम। यस्या यस्य वृत्तस्य प्रथमे पादे प्रथमचरणे द्वादश मात्रा भवन्ति तृतीयचरणेऽपि द्वादशमात्राणां व्यवस्था स्याद् द्वितीये पादेऽष्टादश मात्राः स्युश्चतुर्थचरणे च पञ्चदशमात्रा भवेयुश्चेत्तर्हि तद् वृत्तं जातिरार्या नामधेया कथ्यते। वृत्तरत्नाकरे तत्राऽऽर्याजातेः पथ्याविपुला-पलादिभेदा अनेके निगदिताः किन्तु विस्तरभियाऽत्र ते न भणिताः। जिज्ञासुभिस्तत्तद्ग्रन्थेषु द्रष्टव्यम् ।।४।।

अन्वय– यस्याः प्रथमे पादे तथा तृतीयेऽपि (पादे) द्वादश मात्राः (भवन्ति) द्वितीये (चरणे) ऽष्टादश (मात्रा भवन्ति) चतुर्थके (चरणे च) पञ्चदश (मात्रा भवन्ति) सा आर्या (नामच्छन्दोऽस्ति)।

स्मृति व्याख्या– जिसके प्रथम चरण तथा तृतीय चरण में भी बारह-बारह मात्राएं होती हैं। द्वितीय पाद में अट्ठारह और चतुर्थ चरण में पन्द्रह मात्राएं होती हैं, उसे आर्या छन्द कहा जाता है ।।४।।

वृत्तरत्नाकार में केदारभट्ट ने आर्या के कई भेद बतलाये हैं, परन्तु विस्तार के भय से इन भेदों का कथन यहाँ अपेक्षित नहीं है। संस्कृत तथा प्राकृत कवियों के लिए आर्या छन्द अत्युपादेय रहा है। आर्या जाति में कविता लिखना किञ्चित् कठिन हैं क्योंकि चरणभेद से मात्राओं की विभिन्नता इस छन्द में देखी जाती है। अतः इसके सम्बन्ध में कवियों की उक्ति- **'आर्या भार्या तु भाग्येन'** प्रसिद्ध रही है। यह एक मात्रिक छन्द है।

उदाहरण[2]–

यस्याः प्रथमे पादे = १२ मात्राएं प्रथम पाद ।
२ २ १ १ २ २ २

द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि = १८ मात्राएं-द्वितीय पाद ।
२ १ १ २ २ १ २ १ २ २ २

---

१. 'पादे प्रथमे'- इति पाठान्तरम् ।

२. द्वितीयोदाहरण– 'सा जयति जगत्यार्या देवी दिवमुत्पतिष्णुरतिरुचिरा ।
या दृश्यतेऽम्बरतले कंसवधोत्पातविद्युदिव।।'

अंष्टांदंशं द्विंतींयें = १२ मात्राएं [illegible] पाद।
२ २ १ २ १ २ २

चंतुंर्थंकें पंञ्चंदंशं सांऽऽर्यां = १५ मात्राएं चतुर्थ पाद ।
१ २१२ २१११ २ २

उपर्युक्त छन्द में प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ चरणों में क्रमशः १२, १८, १२, १५ मात्राएं होने से आर्या छन्द हैं।

अथ गीतिजातिमाह

आर्यापूर्वार्द्धसमं द्वितीयमपि यत्र भवति साधुगते ।
छन्दोविदस्तदानीं गीतिं तां प्राक्तना हि भाषन्ते ।।५।।

श्रुतिः– 'आर्येत्यादिना गीतिं लक्षयति ग्रन्थकारः। हे साधुगते ! उत्तमाचरणयुक्ते । विलक्षणगतिशालिनि ! वा यत्र यस्यां जातौ द्वितीयमुत्तरार्द्धमपि पूर्वोक्ताऽऽर्यापूर्वार्द्धसमम् आर्याजातेः प्रथमार्द्धसदृशं भवति। प्राक्तनाः छन्दोविदः प्राचीनच्छन्दः शास्त्रज्ञास्तदानीं तां गीतिं गीतिनामधेयां जातिं हि खलु भाषन्ते कथयन्ति। अस्या गीतेः प्रथमचरणे द्वादशमात्रा भवन्ति। एवमेवाक्तं पिङ्गलेन "आद्यर्धसमागीतिः" (पिङ्गलसूत्रे ४/२८)। वृत्तरत्नाकरेऽपि गीतिलक्षणमुक्तं भट्टकेदारेण- आर्याप्रथमदलोक्तं यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः। दलयोः कृतयतिशोभां तां गीतिं गीतवान् भुजङ्गेशः ।।"– (वृत्तरत्नाकर २/८)। आर्याया यथा षोडशभेदाः स्युस्तथैवाऽत्र त एव भेदा गीतेरपि ज्ञेयाः। विस्तृतत्वात्ते नाऽत्र निगदिता इति।।५।।

अन्वय– साधुगते ! यत्र द्वितीयमपि आर्यापूर्वार्द्धसमं भवति तदानीं प्राक्तनाः छन्दोविदस्तां गीतिं हि भाषन्ते।

स्मृति व्याख्या– हे उत्तम आचरण वाली ! अथवा हे विलक्षण सुन्दर गति वाली ! जहाँ आर्या छन्द के पूर्वार्द्ध के समान ही उत्तरार्ध होता है तो प्राचीन छन्दःशास्त्रमर्मज्ञ उसे गीति नाम से अभिहित करते हैं। आशय यह है कि जिस छन्द के प्रथम चरण में १२ मात्राएं द्वितीय में १८ मात्राएं, तृतीय में १२ मात्राएं और चतुर्थ में १८ मात्राएं दृष्टिगत होती हैं, उसे गीति छन्द की सञ्ज्ञा प्राप्त हैं ।।५।।

आर्या के षोडशभेदों के समान गीति के भी षोडश भेद बतलाये गये हैं, जिनका अवलोकन वृत्तरत्नाकर में किया जा सकता है। गीति का लक्षण आचार्य पिङ्गल ने भी

बतलाया है– "आद्यर्धसमा गीतिः" (पिङ्गलसूत्र ४/२८)। अर्थात् आर्या छन्द के आदि अर्धांश के समान अन्तिम अर्द्धांश जिस छन्द का बताया जाय, उसे गीति कहते हैं। यही बात वृत्तरत्नाकर में भी कही गयी है कि आर्याछन्द के प्रथमदल (प्रथमार्ध) का उक्त लक्षण यदि दोनों दलों अर्थात् प्रथमार्ध और द्वितीयार्ध में घटित हो और चरणान्त में यति (विराम) की शोभा हो तो ऐसे गीति नामक छन्द का मुनि पिङ्गल के द्वारा गान किया गया है–

"आर्याप्रथमदलोक्तं यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः ।
दलयोः कृतयतिशोभां तां गीतिं गीतवान् भुजङ्गेशः ॥

–(वृत्तरत्नाकर २/८)

उदाहरण[१]–

आर्यापूर्वार्द्धसमं २ २ २ २ १ १ २	= १२ मात्राएं – प्रथम पाद
द्वितीयमपि यत्र भवति साधुगते। १ २ १ १ १ २ १ १ १ १ २ १ १ २	= १८ मात्राएं-द्वितीय पाद।
छन्दोविदस्तदानीम् २ २ १ २ १ २ २	= १२ मात्राएं-तृतीय
गीतिं तां प्रोक्तनां हिं भाषन्ते । २ २ २ २ १ २ १ २ २ २	= १८ मात्राएं चतुर्थपाद।

इस प्रकार यहाँ गीति छन्द का श्रुतबोध में कथित लक्षण तथा उदाहरण स्पष्ट किया गया है। यह भी मात्रिक छन्द है।

अथोपगीतिलक्षणमाह

आर्योत्तरार्द्धतुल्यं प्रथमार्द्धमपि प्रयुक्तं चेत् ॥
कामिनि[२] तामुपगीतिं प्रकाशन्ते महाकवयः ॥६॥

श्रुतिः– 'आर्योत्तरार्द्धतुल्यमिति लक्ष्यत उपगीतिः। हे कामिनि! हे सुन्दरि! आर्योत्तरार्द्धतुल्यम् आर्याजातेरुत्तरार्द्धसदृशं चेद् यदि प्रथमार्धं पूर्वार्द्धमपि प्रयुक्तं निर्मितं स्यात् तर्हि महाकवयः

---

१. 'द्वितीयोदाहरण– 'केशववंशीगीतिर्लोकमनोहारिणहारिणी जयति ।
गोपीमानग्रन्थेर्विमोचनी दिव्यगायनाश्चर्या ॥"

२. 'लोके' इति पाठान्तरम् ।

कालिदासप्रभृतयस्तां तज्जातिं नाम्नोपगीतिं प्रकाशयन्ते प्रकटीकुर्वते। अस्याः प्रथमचरणे द्वादश, द्वितीये पञ्चदश, तृतीये द्वादश चतुर्थे च पञ्चदश मात्रा भवन्ति। एतल्लक्षणं भणितं पिङ्गलमुनिना-"अन्त्येनोपगीतिः' (पि०सू०-४/२९) रत्नाकरेऽप्युक्तमस्य वृत्तस्य लक्षणं तद्यथा- "आर्याद्वितीयकेऽर्द्धे यद् गदितं लक्षणं तत्स्यात्। यद्युभयोरपि दलयोरुपगीतिं तां मुनिर्ब्रूते।।"- (वृत्तरत्नाकरे २/९)। आर्येवेयमपि मात्रिकजातिरिति ।।६।।

अन्वय– कामिनि! प्रथमार्द्धमपि आर्योत्तरार्द्धतुल्यं प्रयुक्तं चेत् (तर्हि) महाकवयस्तामुपगीतिं प्रकाशयन्ते ।।

स्मृति व्याख्या– हे सुन्दरि ! जिस छन्द में आर्या के उत्तरार्द्ध के समान पूर्वार्द्ध भी प्रयुक्त हुआ हो तो महाकवि उस छन्द को उपगीति नाम से प्रकाशित करते हैं ।।६।।

इसका तात्पर्य यह है कि उपगीति छन्द के प्रथम चरण में १२ मात्राएं, द्वितीय में १५ मात्राएं, तृतीय में १२ मात्राएं तथा चतुर्थ में पुनः १५ मात्राएं रखी जाती हैं। यह भी मात्रिक छन्द है।

आचार्य पिङ्गल ने इस छन्द के विषय में यही कहा है कि आर्या छन्द के अन्त्य अर्द्धांश के समान यदि पूर्वार्द्ध भी हो तो उसे उपगीति छन्द कहा जायगा– "अन्त्येनोपगीतिः" (पि०सू० ४/२९)। वृत्तरत्नाकर में भी उक्त लक्षण का ही उपन्यास किया गया है। द्रष्टव्य –(वृत्तरत्नाकर २/९)

उदाहरण[१]–

आर्योत्तरार्द्धतुल्यम् २ २ १२१२ २	= १२ मात्राएं-प्रथम पाद
प्रथमार्धमपि प्रयुक्तं चेत् ११ २११२ १२२ २	= १५ मात्राएं-द्वितीय पाद
कामिनि तामुपगीतिं २ ११ २११२२	= १२ मात्राएं-तृतीय पाद
प्रकाशयन्ते महाकवयः १२१२२ १२११२	= १५ मात्राएं चतुर्थ पाद

यहाँ प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ चरण में क्रमशः १२, १५, १२ तथा १५ मात्राएं होने से आर्या छन्द के उत्तरार्द्ध के तुल्य पूर्वार्द्ध में भी मात्राओं के होने से उपगीति छन्द है।

---

१. द्वितीयोदाहरण– 'गान्धर्वं मकरध्वजदेवस्यास्त्रं जगद्विजयि। इति समवे[illegible] मुमुक्षुभिरुपगीतिस्त्यज्यते देशः।।'

अथाऽक्षरपङ्क्तिमाह

आद्यचतुर्थं पञ्चमकं चेत् ॥

यत्र गुरु स्यात् साऽक्षरपङ्क्तिः ॥७॥

श्रुतिः– आद्यचतुर्थमिति वृत्तं लक्ष्यतेऽक्षरपङ्क्तिर्नाम। यत्र यस्मिन् वृत्ते आद्यचतुर्थं प्रथमं चतुर्थं च पञ्चमकं पञ्चमं चेदक्षरं गुरु स्यात्तर्हि पञ्चाक्षरपादयुक्तं छन्दोऽक्षरपङ्क्तिर्नाम भवति॥ केदारभट्टेन वृत्तरत्नाकरेऽक्षरपङ्क्तिच्छन्दः पङ्क्तिरिति नाम्नाऽभिहितम्। यथोक्तं वृत्तरत्नाकरे– **'गौ गिति पङ्क्तिः।'' (वृत्तरत्नाकरे ३/६)** चतुर्षु पादेषु भगणो गुरुद्वयं चेत्स्यात् साऽक्षरपङ्क्तिः कथ्यते सुधीभिः॥ एतदेवोक्तं **छन्दोमञ्जर्या (२/७)** मपि।

अन्वय– यत्र आद्यचतुर्थं पञ्चमकं चेत् गुरु स्यात्साऽक्षरपङ्क्तिः (भवति)।

स्मृतिव्याख्या– जिस छन्द में प्रथम, चतुर्थ तथा पञ्चम वर्ण गुरु हों उसे अक्षरपङ्क्ति छन्द कहा जाता है। इस छन्द में चार चरण होते हैं प्रत्येक चरण में पाँच अक्षर रहते हैं जिनमें प्रथम चतुर्थ तथा पञ्चम दीर्घ और द्वितीय तथा तृतीय लघु (ह्रस्व) होता है। छन्दोमञ्जरी तथा वृत्तरत्नाकर में इस छन्द को पङ्क्ति नाम से बतलाया गया है तथा अक्षरों के लघु गुरु को गण के माध्यम से कहा गया है कि जिसमें एक भगण तथा दो गुरु हों तो वह पङ्क्ति छन्द है– **''२ गौ गिति पङ्क्तिः।''** श्रुतबोध का लक्षण ही यहाँ उदाहरण के रूप में दिया गया है–

उदाहरण[१]–

भ० गु० गु०
ऽ । । ऽ ऽ
आद्य चतुर्थं —— प्रथम पाद ।
१ २ ३ ४ ५
पञ्चमकं चेत् —— द्वितीय पाद ।
१ २ ३ ४ ५

शेष चरणों की मात्रादि पूर्वोक्त प्रकार से ही समझना चाहिए। यहाँ भगण तथा दो गुरु अथवा प्रथम, चतुर्थ और पञ्चम वर्ण गुरु है, अतः अक्षरपङ्क्ति छन्द है।

---

१. द्वितीयोदाहरण-कृष्णसनाथा तर्णकपङ्क्तिः। यामुनकच्छे चारु चचार।

अथ शशिवन्दनामाह

अगुरुचतुष्कं भवति गुरू द्वौ ।
घनकुचयुग्मे[1] ! शशिवदनाऽसौ ॥८॥

श्रुतिः— हे घनकुचयुग्मे ! घनं कठिनं कुचयुग्मं स्तनयुगलं यस्यास्तस्याः सम्बुद्धौ । हे कठोरस्तनयुगले ! यत्र छन्दसि प्रथमवर्णतो वर्णचतुष्ट्यं अगुरु लघु भवति तथा चाऽन्त्यस्थौ द्वौ वर्णौ गुरुतां ब्रजत श्चेत् तर्हि शशिवदनाख्यं वृत्तं भवति। अत्र चतुर्षु चरणेषु प्रतिचरणे षडक्षरव्यवस्था भवति। वृत्तरत्नाकरेऽपि भणितमस्य वृत्तस्य लक्षणम्-"शशिवदना न्यौ।" (वृत्तरत्नाकरे ३/८) यत्र नगणयगणौ भवतस्तत्र शशिवदनावृत्तं भण्यते ॥८॥

अन्वय— हे घनकुचयुग्मे ! यत्र चतुष्कम् अगुरु भवति द्वौ गुरू (स्तः) असौ शशिवदना (स्यात्)।

स्मृतिव्याख्या—जिस छन्द के प्रत्येक पाद में छः अक्षर हो जिनमें प्रथम अक्षर से लेकर चतुर्थ अक्षर तक वर्ण लघु तथा पाँचवां और छठा वर्ण गुरु हों तो शशिवदना छन्द होता है।

केदार भट्ट ने 'वृत्तरत्नाकर' में यही उपर्युक्त व्यवस्था गणों के माध्यम से की है— "शशिवदना न्यौ।" अर्थात् जिस छन्द में नगण तथा यगण एक क्रम से हों तो उसे शशिवदना छन्द कहेंगे। यही लक्षण 'छन्दोमञ्जरी' (२/१०) में भी दिया गया है।

उदाहरण[2]— न० य०

अगुरु चतुष्कम्। —— प्रथम चरण
१२३ ४५६

भवति गुरू द्वौ ॥ —— द्वितीय चरण
१२३ ४५६

इसी प्रकार अन्य चरणों में अक्षरों की व्यवस्था का बोध करना चाहिए। उपर्युक्त लक्षण यहाँ घटित होने से शशिवदना छन्द है।

---

१. 'विमलमते हे'— इति पाठान्तरम्।

२. द्वितीयोदाहरण— शशिवदनानां ब्रजतरुणीनाम् ।
अधरसुधोर्मिं मधुरिपुरैच्छत् ॥

अथ मदलेखामाह

तुर्यं पञ्चमकं चेद् यत्र स्याल्लघु बाले[१]।
विद्वद्‌भिर्मृगनेत्रे[२] प्रोक्ता सा मदलेखा ॥९॥

श्रुतिः— 'तुर्यमिति मदलेखां लक्षयति। यत्र यस्मिन् छन्दसि तुर्यं चतुर्थं पञ्चमकं पञ्चममक्षरं चेल्लघु स्यात् तर्हि हे मृगनेत्रे ! हरिणाक्षि । बाले ! तरुणि ! सा विद्वद्‌भिः सुधीभिर्मदलेखा प्रोक्ता कथिता। सप्ताक्षरजातिर्मदलेखाख्यवृत्तं भवति। तथा चोक्तं वृत्तरत्नाकरे— "मसौगः स्यान्मदलेखा।" (वृत्तरत्नाकरे ३/११) यस्मिन् वृत्ते मगणसगण गुरवः स्युस्तद् वृत्तं मदलेखेत्यभिधीयते ॥९॥

अन्वयः— हे बाले ! मृगनेत्रे ! यत्र तुर्यं पञ्चमकं लघु चेत्स्यात् सा विद्वद्‌भिर्मदलेखा प्रोक्ता।

स्मृतिव्याख्या—जिस छन्द के चतुर्थ तथा पञ्चम वर्ण लघु हो और अन्य सात वर्णों में सभी गुरु हों तो उसे मदलेखा छन्द विद्वानों के द्वारा कहा जाता है। उक्त अक्षरों की व्यवस्था चारों पादों में एक समान होती है।

केदारभट्ट ने वृत्तरत्नाकर में मदलेखा छन्द का लक्षण करते हुए लिखा है कि जहाँ मगण, सगण और एक गुरु हो, तो उसे मदलेखा वृत्त कहा जाता है— "मसौ गः स्यान्मदलेखा।" (वृत्तरत्नाकर ३/११) तथा (छन्दोमञ्जरी २/१५)

उदाहरण[३]— म० स० गु०
तुर्यं पञ्चमकं चेद् —— प्रथमपाद
१ २ ३ ४ ५ ६ ७

म० स० गु०
यत्र स्याद् लघु बाले ! —— द्वितीयपाद।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७

इसी प्रकार मदलेखा छन्द के अन्य पादों में भी इसी प्रकार अक्षरों की व्यवस्था होती है।

---

१. 'विद्वन्'— इति पाठान्तरम् ।

२. 'छन्दोविद्‌भिरवश्यम्'— इति पाठान्तरम् ।

३. द्वितीयोदाहरण— रङ्गे बाहु विरुग्णाद्दन्तीन्द्रान्मदलेखा ।
लग्नाऽभून्मुरशत्रौ कस्तूरीरसचर्चा ॥

अथाऽनुष्टुबादौ श्लोकमाह

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ॥
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥१०॥

श्रुतिः— श्लोक इति श्लोकच्छन्दो लक्ष्यते। श्लोकेऽनुष्टुभि सर्वत्र चतुर्षु चरणेषु पञ्चमं पञ्चमाक्षरं लघु षष्ठं षष्ठाक्षरञ्च गुरु स्यात्। द्विचतुष्पादयोर्द्वितीयचतुर्थचरणयोः सप्तमं सप्तमाक्षरं लघु भवेदन्ययोः प्रथमतृतीयपादयोः सप्तममक्षरं दीर्घत्वं भजते चेत्तद् वृत्तं श्लोक इति ज्ञेयं ज्ञातव्यम्। वाल्मीकिमुनेः क्रौञ्चप्रसङ्गे "मा निषाद! प्रतिष्ठा" मिति वृत्तेनाऽनुष्टुभा प्रवर्तमाना वाणी शोकत्वाच्छलोकत्वेन परिणता यथोक्तं ध्वन्यालोके- **"क्रौञ्च द्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।"** (ध्वन्या० १/५) अष्टाक्षरपदात्मकेऽनुष्टुभि छन्दसि श्लोको नाम वृत्तं वैदिकानुष्टुप्छन्दसो भिन्नत्वं विभर्त्ति ।।१०।।

अन्वय— श्लोके सर्वत्र षष्ठं गुरु पञ्चमं च लघु द्विचतुष्पादयोः सप्तमं ह्रस्वमन्ययोः (सप्तमं) दीर्घं ज्ञेयम् ।

स्मृतिव्याख्या— श्लोक छन्द में प्रत्येक चरण आठ अक्षरों वाला होता है। इसके चारों चरणों में पञ्चम अक्षर लघु तथा षष्ठ वर्ण गुरु होता है। दूसरे तथा चौथे चरण में सप्तम वर्ण लघु और प्रथम तथा तृतीय चरण में सप्तम अक्षर गुरु रखा जाता है। इस छन्द का अपर नाम अनुष्टुप् भी है।

वेदों में भी अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु लौकिक अनुष्टुप् छन्द से वैदिक अनुष्टुप् छन्द की भिन्नता देखी जाती है। प्रत्येक पाद में आठ-आठ अक्षर होने से ही वैदिक अनुष्टुप् हो जाता है जब कि लौकिक अनुष्टुप् में उपर्युक्त श्लोक छन्द जैसी स्थिति रहती है। क्रौञ्चपक्षी के दुःख को देखकर वाल्मीकि मुनि के अन्तर्गत शोक उत्पन्न हुआ और वह शोकाकुल होकर 'मा निषाद०।' इत्यादि अनुष्टुभ् छन्द की वाणी से व्याध के प्रति जो शाप दिया, वही वाणी शोक से श्लोक के रूप में परिणत हो गयी और लोक में नवीन अनुष्टुप् छन्द श्लोक का अवतार हुआ। इस तथ्य को आनन्दवर्द्धन ने स्पष्ट भी किया है— **"क्रौञ्चद्वन्द्व वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।"** (ध्वन्यालोक १/५)

उदाहरण[१]— श्लोके षष्ठं गुरुं ज्ञेयं —— प्रथम पाद
५६ ७

---

१. द्वितीयोदाहरण— वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।।

सर्वत्र लघुं पॅञ्चंमम् । —— द्वितीय पाद
५ ६ ७

द्विचतुष्पादंयोर्ह्रस्वं —— तृतीय पाद
५६७

सप्तमं दीर्घमंन्यंयोः । —— चतुर्थपाद।
५ ६ ७

यहाँ उपर्युक्त लक्षणानुसार प्रत्येक चरण गत लघु गुरु की व्यवस्था होने से श्लोक (अनुष्टुप्) छन्द है।

अथ पद्यमाह

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
षष्ठं गुरु विजानीयादेतत् पद्यस्य लक्षणम् ॥११॥

श्रुतिः– पञ्चममिति पद्यं लक्ष्यते। यस्मिन् वृत्ते सर्वंत्र चतुर्षु पादेषु पञ्चमं पञ्चमाक्षरं लघु ह्रस्वं द्विचतुर्थयोर्द्वितीयचतुर्थयोश्चरणयोः सप्तमं सप्तमसङ्ख्याकमक्षरं लघु स्यात् तथा च सर्वपादेषु षष्ठं षष्ठाक्षरं गुरु भवेत् तर्हि पद्यस्येतल्लक्षणं विजानीयात् बुध्येत। अस्मिन् वृत्तेऽपि प्रतिचरणमष्टाक्षरात्मकं भवति तस्मादिदमनुष्टुभो भेदत्वमेव सङ्गच्छते ॥११॥

अन्वय– सर्वत्र पञ्चमं लघु द्विचतुर्थयोः सप्तमं (लघु) षष्ठं (च सर्वत्र) गुरु (स्यात्) एतत्पद्यस्य लक्षणं विजानीयात्॥

स्मृतिव्याख्या– जिस छन्द में चारों चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तथा सभी चरणों में पञ्चम वर्ण लघु हो और षष्ठ अक्षर गुरु हो। इसके अतिरिक्त द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तमवर्ण लघु हो तो वहाँ पद्य छन्द होता है। इसे पूर्वोक्त श्लोक भी कहते हैं। यह भी अनुष्टुप् छन्द ही है ॥११॥

उदाहरण[१]– पञ्चमं लघुं संर्वत्र —— प्रथम पाद
५ ६ ७

सप्तमं द्विचंतुंर्थयोः । —— द्वितीय पाद
५६७

---

१. द्वितीयोदाहरण– अमुना यमुनाकूलवटमूलविहारिणा ।
हारिणा हरिणा हन्त ! हेलितं हृदयं मम॥

षष्ठं गुरु विजानीया —— तृतीय पाद
५ ६ ७
देतत्पद्यस्यलक्षणम् । —— चतुर्थ पाद
५६७

यहाँ प्रत्येक पाद में लक्षणोक्त लघु गुरु की व्यवस्था होने से पद्य (अनुष्टुप्) छन्द है।

अथ माणवकाक्रीडमाह

आदिगतं तुर्यगतं पञ्चमकं चान्त्यगतम् ॥
स्याद् गुरु चेत्तत्कथितं माणवकाक्रीडमिदम् ॥१२॥

श्रुतिः– 'आदिगतमित्यादिना माणवकाक्रीडं लक्षयति ॥ अस्मिञ्छन्दसि वर्णाः स्युरष्टौ चतुर्षु पादेषु। यत्रादिगतं प्रथमाक्षरं तुर्यगतं चतुर्थाक्षरं पञ्चमं पञ्चममक्षरमन्त्यगतं चरणान्तवर्ति तच्चाष्टममक्षरं चेद् गुरु स्यात् द्विमात्रिकं भवेत्तच्छन्दो माणवकाक्रीडमित्यभिधीयते। वृत्तरत्नाकरे वृत्तमेतन्माणवकमिति नाम्नाऽभिहितम्–**"माणवकं भात्तलगाः।" (वृत्तरत्नाकरे ३/१४)**। पिङ्गलसूत्रेऽस्य सञ्ज्ञा **'माणवकाक्रीडिकम्'** इत्यस्ति। **'माणवकक्रीड'** मिति वृत्तमुक्तावल्यामुक्तं यथा– **"भं गपरं द्विः प्रणयेदित्युदितं यस्य पदम्। माणवकक्रीडमितिज्ञेयमहो वृत्तमदः॥"** (वृत्तमुक्तावल्याम् ३/८०)

अन्वय– आदिगतं तुर्यगतं पञ्चमकम् अन्त्यगतं च गुरु चेत् स्यात्तत् माणवकाक्रीडम् इदं कथितम् ।

स्मृतिव्याख्या– प्रत्येक पाद में आठ-आठ अक्षर हों तथा चारों पादों में प्रथम, चतुर्थ, पञ्चम और अष्टम वर्ण गुरु हो तो उसे माणवकाक्रीड वृत्त कहा जाता है। आचार्य पिङ्गल ने इस छन्द को 'माणवकाक्रीडितकम्' कहा है। वृत्तरत्नाकर में इसे **'माणवक'** छन्द कह कर पुकारा गया है– **"माणवकं भात्तलगाः"** (वृत्तरत्नाकर ३/१४) अर्थात् जिसमें भगण, तगण, लघु तथा गुरु प्रत्येक पाद में क्रमशः हो उसे माणवक छन्द कहते हैं। 'वृत्तमुक्तावली' में भी यही लक्षण दिया गया है, परन्तु छन्द का नाम **'माणवकक्रीड'** है। यह वर्णिक छन्द है। **'छन्दोमञ्जरी' (२/१७)** में भी यही लक्षण दिया गया है।

उदाहरण[1]– भ० त० ल०गु०
आदिगतं तुर्यगतं —— प्रथम पाद
१ २३४ ५६७८

---

१. **द्वितीयोदाहरण–** माणवकाक्रीडितकं यः कुरुते वृद्धवयाः ।
हास्यमसौ याति जने भिक्षुरिव स्त्रीचपलः ॥

भ० त० ल०गु०
पञ्चमंकं चान्त्यंगंतम् । —— द्वितीय पाद
१ २३४ ५ ६७८

इसीप्रकार अन्य चरणो में भी उपर्युक्त लघु गुरु का ज्ञान करना चाहिए। तृतीय और चतुर्थ पाद भी प्रथमपादवत् होंगे।

अथ नगस्वरूपिणीमाह

द्वितुर्यषष्ठमष्टमं गुरु प्रयोजितं यदा ॥
तदा निवेदयन्ति तां बुधा नगस्वरूपिणीम् ॥१३॥

श्रुतिः–द्वितुर्येत्यादिना नगस्वरूपिणी लक्ष्यते। यदा यत्र छन्दसि द्वितुर्यषष्ठं द्वितीयं चतुर्थं षष्ठं तथाष्टमं चाऽक्षरं गुरु दीर्घं प्रयोजितं प्रयुक्तं स्यात् तदा तर्हि बुधाः कोविदास्तां नगस्वरूपिणीं निवेदयन्ति, वृत्तमेतन्नाम वदन्ति। कैश्चिच्छन्दोविद्भिर्वृत्तमिदं प्रमाणिकेति नाम्नाऽभिहितम्। यथोक्तं वृत्तरत्नाकरे– **"प्रमाणिका जरौ लगौ।"** वृत्तरत्नाकर ३/१७) तथोक्तं च वृत्तरत्नावल्याम्– **"लघुर्गुरुनिरन्तरं यथाक्रमं निधीयताम्। तदा प्रमाणिकाभिधं सुवृत्तमष्टवर्णकम् ॥"** (वृत्तमुक्तावल्यां ३/७८) सुवृत्ततिलके (१/१३) वृत्तमिदं 'प्रमाणी' ति कथ्यते ॥

अन्वय– यदा द्वितुर्यषष्ठम् अष्टमं च गुरु प्रयोजितं तदा बुधाः तां नगस्वरूपिणीं निवेदयन्ति।

स्मृतिव्याख्या– प्रत्येक पाद में आठ-आठ अक्षर हों तथा द्वितीय चतुर्थ, षष्ठ और अष्टम अक्षर गुरु हों, तो पण्डितगण उसे नगस्वरूपिणी छन्द कहते हैं। नगस्वरूपिणी छन्द का दूसरा नाम प्रमाणिका है। वृत्तरत्नाकर (३/१७) तथा छन्दोमञ्जरी (२/२०) में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया गया है– "प्रमाणिका जरौ लगौ।"

अर्थात् यदि जगण, रगण, लघु तथा गुरु क्रमशः आये तो प्रमाणिका छन्द बनता है। वृत्तमुक्तावलीकार ने भी यही कहा है कि यदि प्रत्येक पाद में आठ अक्षर हो और उन आठों वर्णों में लघु-गुरु यह क्रम निरन्तर रहे तो वह प्रमाणिका नामक वृत्त कहा जाता है–

"लघुर्गुरुर्निरन्तरं यथाक्रमं निधीयताम् ।
तदा प्रमाणिकाभिधं सुवृत्तमष्टवर्णकम् ॥

(वृत्तमुक्तावली ३/७८)

उदाहरण[1]—
जo रo लoगुo
द्विंतुर्यंषष्ठंमष्टमं —— प्रथम पाद
१ २३४ ५६ ७८
जo रo लoगुo
गुरुं प्रयोजितं यदा —— द्वितीय पाद
१२ ३ ४ ५६ ७८

उपर्युक्त छन्द में अन्य पाद भी प्रथम पाद के अनुसार ही होते हैं, वहाँ भी गण तथा लघु, गुरु की व्यवस्था पूर्ववत् होगी ।

अथ विद्युन्मालामाह

सर्वे वर्णा दीर्घा यस्यां विश्रामः स्याद्वेदैर्वेदैः ॥
विद्वद्वृन्दैर्[2]वीणावाणि व्याख्याता सा विद्युन्माला ॥१४॥

श्रुतिः— 'सर्व' इति विद्युन्माला लक्षयति। हे वीणावाणि ! वीणावाणीव वाणी यस्याः सा वीणावाणी तस्याः सम्बुद्धौ। हे विपञ्ची-स्वरे बाले ! अष्टाक्षरात्मके यस्मिन् वृत्ते सर्वे वर्णा दीर्घा सर्वाण्यक्षराणि गुरूणि स्युर्विश्रामो यतिश्च वेदैर्वेदैर्चतुभिश्चतुभिर्वर्णैः स्याच्चेत्सा विद्युन्माला एतन्नामधेयं छन्दो विद्वद्वृन्दैः कोविदगणैर्व्याख्याता व्याख्यायि। एतल्लक्षणं वृत्तरत्नाकरे (३.१३) भाणितं यथा– **"मो मो गो गो विद्युन्माला।"** अत्र क्वचित् **"मो मो गो गो विद्युल्लेखा"** इति तत्र पाठान्तरमपि प्राप्यते। सुवृत्ततिलकेऽप्युक्त क्षेमेन्द्रेण– **"मकारयुगपर्यन्ते यत्संयुक्तगुरुद्वयम् ॥ विद्युन्मालाभिधं तदिह वृत्तमष्टाक्षरं विदुः॥** (सुवृत्ततिलके १/१२) वृत्तरत्नावल्यामप्युक्तं तथा–**"यस्यामष्टौ वक्रा युक्ताः पादे स्युः सुप्रज्ञैरुक्ताः। सा विज्ञेया विद्युन्माला चेतोहर्त्री यद्वद्बाला॥"** (वृत्तामुक्तावल्याम् ३/७६) वृत्तरत्नाकरानुसारिलक्षणमस्य छन्दोमञ्जर्या (२/१८) मपि प्राप्यते ॥१४॥

अन्वय— (हे) वीणावाणि ! यस्यां सर्वे वर्णा दीर्घा (स्युः) वेदैर्वेदैर्विश्रामः स्यात्सा विद्वद्वृन्दैर्विद्युन्माला व्याख्याता ।

---

१. द्वितीयोदाहरण— विलासिनीविलासिनं तडिद्दुकूलभासिनम् ।
समोदरासलासिनं भजे निकुञ्जवासिनम् ॥

२. छन्दोऽध्येतर्विद्वद्वृन्दैर्"- इति पाठान्तरम् ।

स्मृतिव्याख्या– जिस छन्द के प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं, चार चार वर्णों पर विराम होता है तथा सभी वर्ण दीर्घ होते हैं तो विद्वद्वृन्द उस छन्द को विद्युन्माला कहते हैं।

विद्युन्माला छन्द का लक्षण केदारभट्ट ने भी लिखा है– **"मो मो गो गो विद्युन्माला।"** **(वृत्तरत्नाकर ३/१३)** अर्थात् यदि दो मगण तथा दो गुरु क्रमश हों तो उसे विद्युन्माला छन्द कहा जाता है। यही छन्दोमञ्जरीकार ने भी लिखा है। (द्रष्टव्य छन्दोमञ्जरी २/१८) वृत्तरत्नाकर की कुछ प्राचीन पाण्डुलिपियों में इसे विद्युल्लेखा' छन्द के नाम से अभिहित किया गया है। वृत्तमुक्तावलीकार ने भी विद्युन्माला छन्द का लक्षण उक्त प्रकार से दिया है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी इस छन्द का लक्षण अधोलिखित प्रकारेण दिया है–

मकारयुगपर्यन्ते यत्संयुक्तगुरुद्वयम् ।
विद्युन्मालाऽभिधं तद्धि वृत्तमष्टाक्षरं विदुः ॥

(सुवृत्ततिलक १/१२)

तथा 'विद्युन्माला मौ गौ यह लक्षण पिङ्गल सूत्र (६/११) में भी लिखा है।

उदाहरण[१]–

म० म० गु०गु०
सर्वे वर्णा दीर्घा यस्याम् —— प्रथम पाद
१२ ३४ ५६ ७८

म० म० गु०गु०
विश्रामः स्याद् वेदैर्वेदैः । —— द्वितीय पाद
१२३ ४ ५६७८

शेष पादों में भी उपर्युक्त व्यवस्थानुसार गण अथवा गुरु वर्णों का विन्यास होगा ।

अथ चम्पकमालामाह

तन्वि[२] ! गुरु स्यादाद्यचतुर्थं पञ्चमषष्ठं चान्त्यमुपान्त्यम् ॥
इन्द्रियबाणैर्यत्र विरामः सा कथनीया चम्पकमाला ॥१५॥

श्रुतिः– 'तन्वी' ति चम्पकमालां लक्षयति। हे तन्वि ! तन्वङ्गिबाले ! यत्र यस्मिन् वृत्ते आद्यचतुर्थं प्रथमं चतुर्थञ्च पञ्चमषष्ठं पञ्चमाक्षरं षष्ठाक्षरं चाऽन्त्यं पादान्त्यं दशममुपान्त्यं

---

१. मौनं ध्यानं भूमौ शय्या गुर्वी तस्याः कामावस्था। मेघोत्सङ्गे नृत्तासक्ता यस्मिन् काले विद्युन्माला ॥

२. "शिष्य"– इति पाठान्तरम् ।

नवमाक्षरं च गुरु स्याद् दीर्घं भवेत् । अत्रेन्द्रियबाणैरिन्द्रियाणि पञ्च बाणाः कामबाणाः पञ्च तैः पञ्चभिः पञ्चभिर्वर्णैः विश्रामो यतिः स्यात् सा चम्पकमाला कथनीया चम्पकमालाख्यवृत्तमभिधेयम् ।प्राचीनाचार्यैरेषा 'रुक्मवती' ति नाम्नाऽभिहिता- यथोक्तं पिङ्गलसूत्रे– "रुक्मवती भ्मौ स्गौ।" (पिङ्गलसूत्रे ६/१७)। तथा चोक्तं छन्दोमञ्जर्यां गङ्गादासेन– "रुक्मवती सा यत्र भमस्गाः।" (छन्दोमञ्जर्याम् २/३१) वृत्तरत्नाकरेऽस्यवृत्तस्य नाम चम्पकमालैव-"चम्पकमाला चेद्भमसाद्गः।" वृत्तरत्नाकरे (पृ० ३७) वृत्तरत्नाकरेऽपि 'चम्पकमाला' स्थाने 'रुक्मवती' ति पाठान्तरं क्वचित्प्राप्यते। वृत्तस्याऽस्य लक्षणमुक्तं सुवृत्ततिलकेऽपि– "संयुक्तं भमसैरन्ते गुरुणा च दशाक्षरम्।।वृत्तं रुक्मवती नाम कथितं वृत्तशालिभिः।।(सुवृत्त-तिलके १/१७) चम्पकमाला नाम्ना वृत्तमुक्तावल्यामेतद्वृत्तमुक्तम्- "स्याद्भगणान्ते यद् गुरुयुग्मं सन्तनुत द्विःसङ्गतमेवम् ।। चम्पकमाला नाम सुवृत्तं राजति भूयो मोहितचित्तम् ।।" (वृत्तमुक्तावल्याम् ३/१०७)।।

अन्वय– (हे) तन्वि! यत्र आद्य चतुर्थं पञ्चम षष्ठम् अन्त्यमुपान्त्यञ्च गुरु स्यात्, इन्द्रियबाणै -र्विरामः (भवेत्) सा चम्पकमाला कथनीया।

स्मृतिव्याख्या–जिस छन्द में प्रथम, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, नवम और दशम वर्ण गुरु हों तथा पाँच-पाँच अक्षरों पर यति हो तो उसे चम्पकमाला छन्द कहा जाता है। वृत्तरत्नाकर में इसे गणों के द्वारा इस प्रकार कहा गया है– "चम्पकमाला चेद् भमसाद् गः।" अर्थात् भगण, मगण, सगण तथा एक गुरु यदि क्रम से हों तो उसे चम्पकमाला छन्द कहा जाता है। पिङ्गलादि प्राचीन आचार्यों ने इस छन्द को 'रुक्मवती' कहा है। अन्य आचार्यों के लक्षण अधोलिखित हैं–

१. "रुक्मवती भ्मौ स्गौ"– (पिङ्गलसूत्र ६/१७)

२. संयुक्तं भमसैरन्ते गुरुणा च दशाक्षरम् ।
वृत्तं रुक्मवती नाम कथितं वृत्तशालिभिः।।" (सुवृत्ततिलक १/१७)

३. "रुक्मवती सा यत्र भमस्गाः।" (छन्दोमञ्जरी २/३१)
"स्याद् भगणान्ते यद् गुरुयुग्मं सन्तनुत द्विःसङ्गतमेवम्।
चम्पकमाला नाम सुवृत्तं राजति भूयो मोहितचित्तम् ।।"

(वृत्तमुक्तावली ३/१०७)

उदाहरण[१]– भ० म० स० गु०
तन्विं गुरुं स्यादाद्यचतुर्थं —— प्रथम पाद
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
भ० म० स० गु०
पञ्चमषष्ठं चान्त्यमुपान्त्यम् —— द्वितीय पाद।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

इसी प्रकार अन्य चरणों को भी समझना चाहिए।

अथ मणिबन्धमाह

चम्कमाला यत्र भवेदन्त्यविहीना प्रेमनिधे[२] !
छन्दसि दक्षा ये कवयस्तन्मणिबन्धं ते ब्रुवते[३] ॥१६॥

श्रुतिः– 'चम्पकमाले' त्याह मणिबन्धच्छन्दः। हे प्रेमनिधे ! हे प्रेयसि ! यत्र यस्मिञ्छन्दसि चम्पकमालाच्छन्दोऽन्त्यविहीनाऽन्त्याक्षररहिता भवेत्स्यात् तर्हि छन्दसि दक्षा छन्दःशास्त्रे प्रवीणाः ये कवयः काव्यकाराः सन्ति ते तं वृत्तं मणिबन्धमेतन्नामकं छन्दो ब्रुवते कथयन्ति। नवाक्षरात्मकं वृत्तमिदम्। अत्र पञ्चभिश्चतुर्भिश्चाक्षरैर्यतिर्भवेत्। छन्दोमञ्जरीकारेणाऽस्य वृत्तस्य नाम 'मणिमध्यं' विहितं, यथोक्तं तेनैव-**"स्यान्मणि-मध्यं चेद् भमसाः।"** (छन्दोमञ्जर्याम् २/२५) तथा चोक्तं वृत्तमुक्तावल्याम्– **"चम्पकमाला निश्चरमा चेतसि धार्या सा परमा। स्यान्मणिबन्धं वृत्तमदः शंसत संसन्मध्यसदः॥"** (वृत्तमुक्तावल्याम् ३/१०९)॥

अन्वयः– (हे) प्रेमनिधे ! यत्र चम्पकमाला अन्त्यविहीना भवेद्। छन्दसि दक्षाः ये कवयः ते तं मणिबन्धं ब्रुवते॥

स्मृतिव्याख्या–यदि चम्पकमाला छन्द के पाद अन्तिम एक अक्षर से रहित हों तो छन्दःशास्त्र में प्रवीण कवि उसे मणिबन्ध छन्द कहते हैं। छन्दोमञ्जरीकार ने लिखा है कि यदि भगण, मगण तथा सगण क्रमशः प्रत्येक पाद में हो तो उसे 'मणिमध्य' छन्द कहा जाता है। उसे गङ्गादास ने 'मणिमध्य' नाम से अभिहित किया है– **"स्यान्मणिमध्यं चेद्**

---

१. द्वितीयोदाहरण– भग्नमसत्यैः कायसहस्रैर्मोहमयी गुर्वी भवमाया।
स्वप्नविलासा योगवियोगा रुक्मवती हा कस्य कृते श्रीः ॥

२. 'बुद्धिनिधे' इति पाठान्तरम्। 'लक्षणतः'– इति पाठान्तरञ्च ।

३. "इन्द्रियवेदैश्चेद् विरतिस्तन्मणिबन्धं सङ्कथितम्"– इति पाठान्तरमुत्तरार्द्धे।

भमसाः।" (छन्दोमञ्जरी २/२५) जब कि 'वृत्तमुक्तावली' में इसे 'मणिबन्ध' ही कहा गया है और इसका लक्षण श्रुतबोध के लक्षण के समान ही है। (द्रष्टव्य वृत्तमुक्तावली ३/१०९)।।

उदाहरण[१]— भ० म० स०
चम्पकमाला यत्र भवे — प्रथम पाद
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
भ० म० स०
दन्त्यविहीना प्रेमनिधे — द्वितीय पाद।
१ २३ ४ ५ ६७८९

तृतीय तथा चतुर्थ चरणों में भी उपर्युक्त प्रकारेण गणादि की व्यवस्था होगी।

अथ शालिनीमाह

ह्रस्वो वर्णो जायते यत्र षष्ठः कम्बुग्रीवे[२] तद्वदेवाष्टमान्त्यः ।
विश्रामः स्यात्तन्वि[३]! वेदैस्तुरङ्गैस्तां भाषन्ते शालिनीं छान्दसीयाः ।।१७।।

श्रुतिः— 'ह्रस्व' इति शालिनी लक्ष्यते। हे तन्वि ! कम्बुग्रीवे ! शङ्ख-बन्धुरकन्धरे ! एकादशाक्षरात्मकेऽस्मिञ्छन्दसि चेत्षष्ठो वर्णो ह्रस्वो लघुत्वं जायते गच्छति तद्वदेवाऽष्टमान्त्यो नवमो वर्णः ह्रस्वः स्यात्तर्हि छान्दसीयाः छन्दः शास्त्रमर्मज्ञास्तां वृत्तिं शालिनीं भाषन्ते कथयन्ति। अत्र वेदैश्चतुर्भिस्तुरङ्गैः सप्तभिश्च यतिः कर्त्तव्या। वृत्तरत्नाकरे (३/३४) ऽप्युक्तमस्य लक्षणम्— "शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः।" (पिङ्गलसूत्रे ६/२५) लक्षणमस्य वृत्तस्य 'शालिनी म् तौ त् गौ ग्' समुद्र ऋषयः । तथोक्तं छन्दोमञ्जर्याम् (२/४५) मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः। एवमेव भणितं क्षेमेन्द्रेण— "पूर्वाक्षरचतुष्कान्तविरतिर्मततान्विता। गुरुद्वितययुक्ता च शालिन्येकादशाक्षरा।।" (सुवृत्ततिलके १/२२) किञ्चोक्तं तथैव वृत्तमुक्तावल्याम् (३/१२५)— "यत्पादे स्युर्निर्मिता वेदवक्रा भूयो रम्यं रद्वयं चापि वक्रम् । इत्थं यत्या योजितेयं मनोज्ञा प्राज्ञैरुक्ता शालिनीशोभमाना।।"

---

१. द्वितीयोदाहरण— अम्बरविद्युद्द्योतधरं कुन्दवलाकाजातभरम् ।
मोदनलीलावारिझरं भावय कञ्चिन्मेघवरम् ।।

२. 'जिज्ञासो'— इति पाठान्तरम् ।

३. 'शिष्य'— इति पाठान्तरम् ।

अन्वय– (हे) तन्वि ! कम्बुग्रीवे ! यत्र षष्ठो वर्णो ह्रस्वो जायते तद्वदेवाऽष्टमान्त्यः (अपि ह्रस्वो भवेद्) वेदैस्तुरङ्गैः (च) विश्रामः स्यात्, छान्दसीयास्तां शालिनीं भाषन्ते ।

स्मृतिव्याख्या–प्रत्येकपाद में एकादशाक्षर हो तथा इनमें षष्ठ और नवम वर्ण ह्रस्व हों, चार-चार तथा सात-सात अक्षरों पर यति हो तो छन्दःशास्त्र के मर्मज्ञ इसे शालिनी छन्द कहते हैं। केदारभट्ट ने भी वृत्तरत्नाकर (३/३४) में शालिनी वृत्त का लक्षण दिया है– "शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः।" अर्थात् यदि मगण, तगण, तगण तथा दो गुरु क्रम से हों तो उसे शालिनी छन्द कहते हैं जिसमें चार तथा सात वर्णों पर विराम भी होता है। आचार्य क्षेमेन्द्र तथा श्रीकृष्णभट्ट ने भी शालिनी छन्द के अधोलिखित लक्षण लिखे हैं–

१. पूर्वाक्षरचतुष्कान्तविरतिर्मततान्विता ।
गुरुद्वितययुक्ता च शालिन्येकादशाक्षरा ।। (सुवृत्ततिलक १/२२)

२. यत्पादे स्युर्निमिता वेदवक्रा भूयो रम्यं रद्वयं चापि वक्रम् ।।
इत्थं यत्या योजितेयं मनोज्ञा प्राज्ञैरुक्ता शालिनी शोभमाना ।।
(वृत्तमुक्तावली ३/१२५)

३. 'शालिनी म् तौ त् गौ ग् समुद्रऋषयः। (पि०सू० ६/२५)

४. मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः (छन्दोमञ्जरी २/४५)

उदाहरण[1]–

म० | त० | त० | गु०गु०

ह्रस्वो वर्णो जायते यत्र षष्ठः — प्रथम पाद

६ ९

म० | त० | त० | गु० गु०

कम्बुग्रीवे तद्वदेवाऽष्टमान्त्यः — द्वितीय पाद।

६ ९

अन्य पादों को भी उपर्युक्त प्रकारेण समझना चाहिए।

अथ मन्दाक्रान्तामाह

चत्वारः प्राक् सुतनु[2] गुरवो द्वौ दशैकादशौ चे-

---

१. द्वितीयोदाहरण– मत्ता गोष्ठीगर्भमूढप्रलापा प्रौढागाढालिङ्गिता यौवनेन ।
मध्वाताम्रस्वेदमीलत्कपोला लोला लीलाशालिनी कस्य नेष्टा ।।

२. "यदि हि"– इतिपाठान्तरम्, "(प्राग) थ च"– इति पाठान्तरम् ।

न्मुग्धे[1] वर्णो तदनु कुमुदामोदिनि द्वादशान्त्यौ ।
तद्वच्चान्त्यौ युगरसहयैर्यत्र कान्ते[2] विरामो ।
मन्दाक्रान्तां प्रवरकवयस्तन्वि[3] तां सङ्गिरन्ते ।।१८।।

श्रुतिः– 'चत्वार' इति मन्दाक्रान्ता लक्ष्यते। हे सुतनु ! हे सुन्दरि ! यस्यां चत्वारो वर्णाः प्रागादौ गुरवो भवन्ति। हे मुग्धे ! ततो द्वौ दशैकादशौ वर्णौ गुरू स्याताम्। हे कुमुदामोदिनि! हे कुमुदपरिमले ! तदनु पुनर् द्वादशान्त्यौ त्रयोदशचतुर्दशौ वर्णौ गुरू दीर्घौ भवतः। तद्वत् तथैवाऽऽन्त्यौ षोडशसप्तदशौ च वर्णौ दीर्घौ भवेताम् । हे कान्ते ! हे प्रेयसि ! युगरसहयैश्चतुःषट्सप्तभिरक्षरैश्च विरामो यतिः स्यात्। हे तन्वि ! हे कृशाङ्गि ! तां वृत्तिं प्रवरकवयः श्रेष्ठकाव्यकर्त्तारो मन्दाक्रान्तां वृत्तजातिं सङ्गिरन्ते वदन्ति।। अस्मिन् वृत्ते सप्तदशाक्षराणि भवन्ति। पिङ्गलसूत्रेऽस्य लक्षणमुक्तम्– "मन्दाक्रान्ता म्भौ नतौ तगौ ग् समुद्रर्तुस्वराः ।" (पिङ्गलसूत्रे ७/१९) वृत्तरत्नाकरेऽप्युक्तम्– "मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत् ।" (वृत्तरत्नाकरे ३/९७) तथा च छन्दोमञ्जर्यामपि (२/१६६)–"मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भगो गो ययुग्मम् ।" एवमेवोक्तं सुवृत्ततिलके- चतुःषट्सप्तविरति वृत्तं सप्तदशाक्षरम्। मन्दाक्रान्ता मभनतैस्तगगैश्चाभिधीयते।। (सुवृत्ततिलके १/३५) श्रुतबोधानुसारमेवैतल्लक्षणमुक्तं वृत्तमुक्तावल्याम् ।।१८।।

अन्वय–(हे) सुतनु ! यत्र प्राक् चत्वारः गुरवः, दशैकादशौ च द्वादशान्त्यौ तद्वदेवाऽन्त्यौ अपि च द्वौ (गुरू स्याताम्) (हे) मुग्धे ! कुमुदामोदिनि ! कान्ते (हे) तन्वि ! युगरसहयैर्विरामश्च (स्यात्) प्रवरकवयः तां मन्दाक्रान्तां सङ्गिरन्ते ।

स्मृतिव्याख्या– प्रत्येक पाद में सत्रह अक्षर होते हैं तथा सभी चरणों में प्रथम से चार वर्ण, दशम, एकादश, त्रयोदश, चतुर्दश, षोडश तथा सप्तदश अक्षर गुरु हों। इसके अतिरिक्त चार, छः तथा सात वर्णों पर यति हो तो श्रेष्ठ कवि उसे मन्दाक्रान्ता छन्द कहते हैं। आचार्य पिङ्गल ने इसका लक्षण देते हुए कहा है कि जिस छन्द में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण तथा दो गुरु हों और ४, ६, ७ अक्षरों पर विराम हो तो उसे मन्दाक्रान्ता वृत्त कहते हैं–

---

१. "छन्दोज्ञानप्रसितधिषणाऽनारतम्"– इति पाठान्तरम् ।
"तद्वद्वर्णौ तदनु गुरुताशालिनौ"–इति पाठान्तरम् ।
२. "वृत्ते"– इति पाठान्तरम्, "भूयाद्"– इति पाठान्तरम् ।
३. "साधु"– इति पाठान्तरम्, "तां मुदा,"– इति पाठान्तरम् ।

१. मन्दाक्रान्ता म्भौ न्तौ त्गौ ग् समुद्रर्तुस्वराः।'' (पिङ्गलसूत्र ७/१९)
वृत्तरत्नाकर आदि ग्रन्थों के लक्षण अधो लिखित हैं–

२. मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत् ।'' (वृत्तरत्नाकर ३/९७)

३. ''मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भगौ गो ययुग्मम् ।'' (छन्दोमञ्जरी २/१६६)

४. चतुःषट्सप्तविरतिवृत्तं सप्तदशाक्षरम् ।
मन्दाक्रान्ता मभनतैस्तगगैश्चाभिधीयते ।। (सुवृत्ततिलक १/३५)

५. वेदा वक्रा नगणसगणौ रद्वयं चापि वक्रं
यस्यामेवं चरणनियमो भोगिराजेन गीतः ।
विश्रामः स्याद्युगरसहयैः सर्वदाऽऽनन्दहेतु-
र्मन्दाक्रान्ता परिलसति सा वृत्तशास्त्रे प्रसिद्धा ।। (वृत्तमुक्तावली ३/२३०)

उदाहरण[१]–

म० भ० न० त० त० गु० गु०
चत्वारः प्राक् सुतनु गुरवो द्वौ दशैकादशौ चे —— प्रथम पाद
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७

म० भ० न० त० त० गु० गु०
न्मुग्धे वर्णौ तदनु कुमुदामोदिनि द्वादशान्त्यौ —— द्वितीय पाद
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७

ऐसी ही गुरु लघु की व्यवस्था अन्य चरणों में समझनी चाहिए।

अथहंसीच्छन्द आह

मन्दाक्रान्ताऽन्त्ययतिरहिता सालङ्कारे[२] भवति यदि सा ।
तद् विद्वद्[३]भिर्ध्रुवमभिहिता ज्ञेया हंसी कमलवदने[४] ।।१९।।

श्रुतिः– 'मन्दाक्रान्ते'ति हंसीं लक्षयति। हे अलङ्कारैराभूषणैः सहित ! साभूषणे ! कमलवदने! पद्मानने ! यदि मन्दाक्रान्ताऽन्त्ययति रहिता मन्दाक्रान्तावृत्तस्याऽन्तिमसप्त-

---

१. द्वितीययोदाहरण– मध्ये भङ्गी वलन विततापाङ्गसंसङ्गभाजः। स्मर्यन्ते ते यदि धृतिमुषः पक्ष्मलाक्षीकटाक्षाः। तत् किं मिथ्यानियमनिभृतैः कानने धीयते धीर्मन्दाक्रान्ता दशति निशिता पन्नगी पाणिसक्ता।।

२. 'सद्योग्राहाहिन्'– इति पाठान्तरम्। 'वर्णयुक्ता दशभिरिह सा'–इति पाठान्तरम्।

३. ''विद्वद्वृन्दै''– इति पाठान्तरम् ।

४. 'शुचितममते'– इति पाठान्तरम्। 'विदितविभवा'– इति पाठान्तरम् ।

क्षरविरामो यत्र स्यात्तर्हि विद्वद्भिः सुधीभिर्ध्रुवं निश्चयेनाऽभिहिता कथिता हंसी नाम वृत्ति-र्ज्ञेया ज्ञातव्या। दशाक्षरात्मकं वृत्तमिदम् । अस्य लक्षणमुक्तं वृत्तरत्नाकरपरिशिष्टे– "ज्ञेया हंसी मभनगयुता।" एवमेव छन्दो मञ्जर्यामपि।(२/४०) तथा चोक्तं वृत्तमुक्तावल्याम् (३/११६)– "मन्दाक्रान्ता कविविरहिता प्रान्ते सप्ताक्षरविरहिता। सा विज्ञेया विमलमतिभिर्नाम्ना हंसी विबुधततिभिः ।।"१९।।

अन्वय–(हे) सालङ्कारे ! कमलवदने ! यदि सा मन्दाक्रान्ताऽन्त्ययतिरहिता भवति। तद् विद्वद्भिः ध्रुवम् अभिहिता हंसी ज्ञेया ।

स्मृतिव्याख्या–मन्दाक्रान्ता छन्द यदि अन्त्य यति अर्थात् अन्तिम सात अक्षर से रहित हो तो विद्वज्जन उसे 'हंसी' कहते हैं। इसमें दश वर्ण होते हैं। 'हंसी' छन्द में चार तथा छः अक्षरों पर यति होती है। वृत्तरत्नाकर परिशिष्ट में गणानुसार हंसी छन्द का लक्षण दिया गया है– "ज्ञेया हंसी मभनगयुता।" यही लक्षण 'छन्दोमञ्जरी (२/४०) में भी प्राप्त होता है। अर्थात् मगण, भगण, नगण तथा एक गुरु हो तो उसे हंसी छन्द कहा जाता है श्रुतबोध के अनुसार ही 'वृत्तमुक्तावली' में हंसी छन्द का लक्षण निम्नलिखित है–

"मन्दाक्रान्ता कविवरहिता प्रान्ते सप्ताक्षरविरहिता ।
सा विज्ञेया विमलमतिभिर्नाम्ना हंसी विबुधततिभिः।।

(वृत्तरत्नावली ३/११६)

उदाहरण[1]–

म० भ० न० गु०	
मन्दाक्रान्ताऽन्त्ययतिरहिता	—— प्रथम पाद
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०	
म० भ० न० गु०	
सालङ्कारे भवति यदि सा।	—— द्वितीय पाद
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०	

उपर्युक्त उदाहरणानुसार अन्य चरणों का बोध करना चाहिए।

---

१. द्वितीयोदाहरण– कुञ्जे कुञ्जे कृतविलसनं विद्युन्मालाललितवसनम् ।।
चन्द्रज्योत्स्नाविशदहसनं वन्दे कृष्णं ब्रजनिवसनम् ।।

अथ दोधकवृत्तमाह

आद्यचतुर्थमहीननितम्बे[१] सप्तमकं दशमं च तथाऽन्त्यम् ।
यत्र[२] गुरु प्रकटस्मर[३]सारे तत्कथितं ननु दोधकवृत्तम् ॥२०॥

'आद्ये' ति दोधकं लक्षयति । हे अहीननितम्बे ! अहीनौ सुपुष्टौ नितम्बौ कटिपश्चाद्भागौ यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ सुपुष्टश्रोणि ! यत्र यस्मिञ्छन्दसि आद्यचतुर्थं प्रथमं चतुर्थञ्च, सप्तमकं सप्तमं दशमं तथाऽन्यमेकादशमक्षरं गुरु दीर्घं भवेत् तर्हि हे प्रकटस्मरसारे प्रकटः स्मरसारः कामबलं नवयौवनं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे प्रस्फुटितनवयौवने। एतद्वृत्तं दोधकनाम्ना कथितम् । पिङ्गलाचार्योऽपि ब्रूते– "दोधकं भौ भ गौ ग्।" (पिङ्गलसूत्रे ६/२४) एतदेवोक्तं वृत्तरत्नाकरे (३/३३)– "दोधकवृत्तमिदं भभभाद्गौ।" छन्दोमञ्जर्या (२/५१)– मुक्तं लक्षणमेतत्– "दोधकमिच्छति भत्रितयाद्गौ।" तथा चोक्तं क्षेमेन्द्रेण– "भकारत्रयसंयुक्तमन्ते गुरुयुगान्वितम् । कथितं दोधकं नाम वृत्तमेकादशाक्षरम् ।" (सुवृत्ततिलके १/२१) ॥

अन्वय– (हे) अहीननितम्बे ! प्रकटस्मरसारे ! यत्र आद्यचतुर्थं सप्तमकं दशमं च तथाऽन्त्यं गुरु (भवेत्) तन्ननु दोधकवृत्तं कथितम् ॥

स्मृतिव्याख्या– एकादशाक्षर वृत्त में यदि प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, दशम तथा एकादश अक्षर गुरु हों तो वह दोधक नामक छन्द कहा जाता है। आचार्य पिङ्गल ने कहा है कि यदि तीन भगण और दो गुरू हों तो उसे दोधकवृत्त कहा जाता है–

१. "दोधकं भौ भ्गौ ग् ।" (पिङ्गलसूत्र ६/२४)

अन्य छन्दःशास्त्र के ग्रन्थों में दोधक छन्द के जो लक्षण दिये गये हैं उन्हें यहाँ उद्धृत किया जाता है–

२. दोधकवृत्तमिदं भभभाद्गौ"– (वृत्तरत्नाकर ३/३३)
३. दोधकमिच्छति भत्रितयाद्गौ"– (छन्दोमञ्जरी २/५१)
४. भकारत्रयसंयुक्तमन्ते गुरु गान्वितम् ।
कथितं दोधकं नाम वृत्तमेकादशाक्षरम् ॥ (सुवृत्ततिलके १/२१)

---

१. –'महीनमते'– इतिपाठान्तरम् –'मिहाक्षरयुक्तं'– इतिपाठान्तरम् ।
२. छन्दसि यत्र गुरुत्वसमेतम्' – इति पाठान्तरम् ।
३. 'प्रकटस्मृतिशक्ते'– इति पाठान्तरम् ।

उदाहरण[१]—
भ० भ० भ० गु०गु०
आंद्यंचंतुंर्थं मंहींनंनिंतंम्बें —— प्रथम पाद
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११

भ० भ० भ० गु०गु०
संसंमंकं दंशंमं चं तंथांन्त्यंम्। —— द्वितीय पाद
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११

यहाँ अन्य पादों में पूर्ववत् लघु गुरु की व्यवस्था रहती है।

अथेन्द्रवज्रामाह

यस्यां[२] त्रिषट्सप्तममक्षरं स्याद्ध्रस्वं सुजङ्घे[३] नवमं च तद्वत् ॥
गत्या विलज्जीकृतहंसकान्ते तामिन्द्रवज्रां ब्रुवते कवीन्द्राः ॥२१॥

श्रुतिः—'यस्या' मिति वृत्तं लक्ष्यत इन्द्रवज्रानाम। हे सुजङ्धे! हे सुष्ठुजङ्घे! यस्या यस्मिन् वृत्ते त्रिषट्सप्तमं तृतीयं षष्ठं सप्तममक्षरं तद्वन् नवमं नवमाक्षरं ह्रस्वं लघु स्याद् भवेत् । हे गत्या विलज्जीकृतहंसकान्ते ! गमनेन विलज्जीकृता हंसस्य कान्ता यया सा तत्सम्बुद्धौ हे गमनविलज्जीकृतहंसि ! तामेहादृर्शी वृत्तिं कवीन्द्राः कविश्रेष्ठा इन्द्रवज्रां ब्रुवते कथयन्ति। एतल्लक्षणमुक्तं पिङ्गलसूत्रे (६/२१)– "इन्द्रवज्रा तो ज्गौ ग् ।" बृत्तरत्नाकरे (३/२८) ऽप्युक्तम्– "स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौगः ।" एवमेव प्राप्यते छन्दोमञ्जर्यामपि तथा चोक्तं सुवृत्ततिलके (१/१८) तकाराभ्यां जकारेण युक्तं गुरुयुगेन च। इन्द्रवज्राभिधं प्राहुर्वृत्तमेकादशाक्षरम् ।।" इन्द्रवज्रालक्षणं निगदितं वृत्तमुक्तावल्याम् (३/१३९)– "यस्यां तकारद्वितयं जकारः प्रान्ते निधेयं गुरुवर्णयुग्मम्। मात्राभिरष्टादशसम्मिता सा सैकादशार्णा जयतीन्द्रवज्रा।।"

अन्वय– (हे) सुजङ्घे ! यस्यां त्रिषट्सप्तममक्षरं तद्वत् नवमं च ह्रस्वं स्यात्। (हे) गत्या विलज्जीकृतहंसकान्ते ! कवीन्द्राः ताम् इन्द्रवज्रां ब्रुवते।

---

१. द्वितीयोदाहरण— दोधकमर्थविरोधकमुग्रं स्त्रीचपलं युधि कातरचित्तम् ।
स्वार्थपरं मतिहीनममात्यं मुञ्चति यो नृपतिः स सुखी स्यात् ।।

२. 'यत्र' इति पाठान्तरम्।

३. 'तु वृत्ते'– इतिपाठातरम्। "ह्रस्वत्वयुक्तं"– इति पाठान्तरम् ।

४. "मत्या विलज्जीकृतवाक्पते हे'– इति पाठान्तरम् ।
'श्रीकालिदासादिकवीन्द्रमान्याम्'– इति पाठान्तरम् ।

५. 'बुधेन्द्राः'– इति पाठान्तरम् ।

स्मृतिव्याख्या–जिस छन्द के प्रत्येक पाद में एकादश अक्षर होते हैं, उनमें तृतीय षष्ठ, सप्तम और नवमवर्ण ह्रस्व होंतो कविश्रेष्ठ उसे इन्द्रवज्रा नामक वृत्त कहते हैं। पिङ्गल सूत्र, वृत्तरत्नाकर और छन्दोमञ्जरी में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है कि जिसके प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण तथा दो गुरु क्रम से हों तो उसे इन्द्रवज्राछन्द कहते हैं–

१. "इन्द्रवज्रा तौ ज् गौ ग् ।"– (पिङ्गल सूत्र ३/२१)

२. "स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः"– (वृत्तरत्नाकर ३/२८, तथा छन्दोमञ्जरी २/४१)

'सुवृत्त तिलक' और 'वृत्तमुक्तावली' में भी इन्द्रवज्राछन्द के लक्षण दिये गये हैं, यथा–

"तकाराभ्यां जकारेण युक्तं गुरुयुगेन च ।
इन्द्रवज्राभिधं प्राहुर्वृत्तमेकादशाक्षरम् ॥"
–(सुवृत्ततिलक १/१८)

इसी प्रकार वृत्तमुक्तावली (३/१३९) का लक्षण भी प्राप्त होता है, इसे संस्कृत टीका में देखना चाहिए।

उदाहरण[१]–

त० त० ज० ग० ग०
यस्यां त्रिषट्सप्तममक्षरं स्याद् —— प्रथम पाद
१ २ ३ ४ ५६७८९१० ११

त० त० ज० ग०ग०
ह्रस्वं सुजङ्घे नवमं च तद्वत् । —— द्वितीय पाद।
१२ ३४ ५ ६७८ ९१०११

उपर्युक्त चरणानुसार इन्द्रवज्रा के अन्य पादों में गणों की व्यवस्था होती है।

अथोपेन्द्रवज्रामाह

यदीन्द्रवज्राचरणेषु पूर्वे भवन्ति वर्णा लघवः सुवर्णे[२] !
अमन्दमाद्यन्मदने तदानीमुपेन्द्रवज्रा कथिता कवीन्द्रैः ॥२२॥

---

१. द्वितीयोदाहरण– ये दुष्ट लोका इह भूमिलोके द्वेषं व्यधुर्गोद्विजदेवसङ्घे ।
तानिन्द्रवज्रादपि दारुणाङ्गान् व्याजीवयद्यः सततं नमस्ते ॥

२. 'कदाचित्'– इतिपाठान्तरम् । 'लघुतासमेता'– इति पाठान्तरम् ।

३. 'कुशाग्रवत् तीक्ष्णमते'– इति पाठान्तरम् ।
'अमन्दविद्याविदितैः'– इति पाठान्तरम् ।

श्रुतिः– हे सुवर्णे ! गौराङ्गि ! अमन्दमाद्यन्मदने ! अमन्दं बहुलं माद्यन् मुदितां प्राप्नुवन् मदनः कामो यस्यां सा तत्सम्बुद्धौ। यदि चेद् इन्द्रवज्राचरणेषु इन्द्रवज्रापादेषु सर्वेषु पूर्वे वर्णा आद्याक्षराणि लघवो ह्रस्वानि भवन्ति तदानीं तर्हि कवीन्द्रैः कविप्रवरैरुपेन्द्रवज्रा कथिताऽभिहिता। उपेन्द्रवज्राछन्दोलक्षणमुक्तं पिङ्गलसूत्रे– "उपेन्द्रवज्रा ज् तौ ज् गौग्।" (पिङ्गलसूत्र ६/२२) केदारभट्टेनाऽपि निगदितम्– "उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।" (वृत्तरत्नाकरे ३/२९) छन्दोमञ्जर्यां (२/४२) लक्षणमुक्तमस्य– "उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा।" तथा चोक्तं क्षेमेन्द्रण–

"जतजैर्गुरुयुग्मेन संसक्तैरुपलक्षितम् ।
वदन्त्युपेन्द्रवज्राख्यं वृत्तमेकादशाक्षरम् ॥"

(सुवृत्ततिलके १/१९)

श्रुतबोधानुरूपमेवोक्तं वृत्तमुक्तावल्यां तद् यथा– "यदीन्द्रवज्रा लघुवर्णवक्त्रा विधीयते नागपतेर्निदेशात् । उपेन्द्रवज्रेति तदा कवीन्द्रैर्विरच्यते चारुकवित्वकीर्त्यै ॥" (वृत्तमुक्तावल्यां- ३/१४४)॥

अन्वय– (हे) सुवर्णे ! अमन्दमाद्यन्मदने । यदि इन्द्रवज्राचरणेषु पूर्वे वर्णा लघवो भवन्ति, तदानीं कवीन्द्रैः उपेन्द्रवज्रा कथिता।

स्मृतिव्याख्या– यदि इन्द्रवज्रा छन्द के चारों पादों में प्रथम वर्ण लघु हो तो श्रेष्ठ कवियों द्वारा उसे उपेन्द्रवज्रा छन्द कहा जाता है। इसमें एकादश वर्ण प्रत्येक चरण में रखे जाते हैं। आचार्य पिङ्गल तथा क्षेमेन्द्र आदि ने उपेन्द्रवज्रा का लक्षण बतलाते हुए लिखा है कि यदि प्रत्येक चरण में एक जगण, एक तगण और एक जगण तथा दो गुरु क्रम से हों तो उसे उपेन्द्रवज्रा छन्द कहा जायगा । इन आचार्यों की परिभाषाएं यहाँ उद्धृत की जाती हैं–

१. "उपेन्द्रवज्रा ज् तौ ज् गौ ग् ।" (पिङ्गलसूत्र ६/२२)
२. "उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ"– (वृत्तरत्नाकर ३/२९)
३. "उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा"– (छन्दोमञ्जरी २/४२)
४. जतजैर्गुरुयुग्मेन संसक्तैरुपलक्षितम् ।
वदन्त्युपेन्द्रवज्राख्यं वृत्तमेकादशाक्षरम् ॥ (सुकृत्ततिलक १/१९)
५. यदीन्द्रवज्रा लघुवर्णवक्त्रा विधीयते नागपतेर्निदेशात् ।
उपेन्द्रवज्रेति तदा कवीन्द्रैर्विरच्यते चारुकवित्वकीर्त्यैः॥ (वृत्तमुक्तावली ३/१४४)

उदाहरण[१]— ज० त० ज० गु०गु०
यदीन्द्र वज्राचरणेषु पूर्वे — प्रथम पाद
१२ ३ ४ ५६७८९१०११
ज० त० ज० गु०गु०
भवन्ति वर्णा लघवः सुवर्णे । — द्वितीय पाद।
१२ ३ ४ ५ ६७८ ९१०११

अन्य चरणों में भी इसी प्रकार लघु गुरु की व्यवस्था उपेन्द्रवज्रा छन्द में होती है।

अथोपजातिमाह

यत्र द्वयोरप्यनयोस्तु पादा भवन्ति सीमन्तिनि[२] चन्द्रकान्ते ।
विद्वद्भिराद्यैः परिकीर्तिता सा प्रयुज्यतामित्युपजातिरेषा ॥२३॥

श्रुतिः— 'यत्रे'ति लक्ष्यत उपजातिः। हे सीमन्तिनि ! सुष्ठुकेशवेशे ! चन्द्रकान्ते ! शशिप्रभे! यत्र यस्मिन् वृत्तेऽनयोरिन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्द्वयोरुभयोरपि पादाश्चरणा भवन्ति क्रमेण। तद्यथा प्रथमे तृतीये चेन्द्रवज्रापादौ द्वितीये चतुर्थे चोपेन्द्रवज्राचरणौ स्याताम् । एतद्वृत्तमाद्यैश्चिरन्तनैः पिङ्गलादिभिर्विद्वद्भिः छन्दःशास्त्रज्ञैरुपजाति'रेतन्नाम्नी वृत्तजातिः परिकीर्तिता प्रतिपादिता सा प्रयुज्यतां विरच्यताम्। अस्योपजातेर्लक्षणमुक्तं पिङ्गलाचार्येण— "आद्यन्तावुपजातयस्ताः" (पिङ्गलसूत्रे ६/२३) वृत्तरत्नाकरे छन्दोमञ्जर्याञ्चोक्तम्—

"अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥"
(वृत्तरत्नाकरे ३/३१)

तथा चोक्तं क्षेमेन्द्रेण— "पदानन्तरविन्यासयोगैर्बहुभिरेतयोः। वैचित्र्यजातिरुचिरा भवन्त्येवोपजातयः॥(सुवृत्ततिलके १/२०) एतत्क्षेमेन्द्रमतानुसारमिन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोश्चरण-क्रमोऽत्र नोऽपेक्षते। चतुर्षु पादेषु चेदेकोऽपि पाद इन्द्रवज्रावृत्तस्योपेन्द्रवज्रावृत्तस्य वा

---

१. द्वितीयोदाहरण— उपेन्द्रवज्रादिमणिच्छटाभिर्विभूषणानां छुरितं वपुस्ते।
स्मरामि गोपीभिरुपास्यमानं सुरद्रुमूले मणिमण्डपस्थम् ॥

२. "सद्वृत्ततयाऽतिकान्त"— इति पाठान्तरम् ।
"तावन्मिलिता मिथस्ते"— इति पाठान्तरञ्च ।

स्यात्तर्हि वृत्तिरेषा भवत्युपजातिः। अपि च केचन स्वागतारथोद्धतयोरिन्द्रवंशावंशस्थयोश्च मिथः पादमिश्रितेन निर्मितां जातिमुपजातिं वदन्ति। तत्सर्वमत्र विस्तरभिया नोदितम् । उपजातिलक्षणं निगदितं वृत्तमुक्तावल्याम्– "यत्रेन्द्रवज्रा प्रथमे तृतीये द्वितीयतुर्योर्यदुपेन्द्रवज्रा। सा प्राज्ञवर्यैरुपजातिरुक्ता मनोज्ञविच्छित्तिविशेषयुक्ता।। (वृत्तमुक्तावल्याम्– ३/१४६)

अन्वय– (हे) सीमन्तिनिं ! चन्द्रकान्ते ! यत्र अनयोर्द्वयोरपि तु पादा भवन्ति। आद्यैर्विद्वद्भिः परिकीर्त्तिता सा एषा उपजातिरिति प्रयुज्यताम् ।

स्मृतिव्याख्या– यदि छन्द के प्रथम और तृतीय पाद इन्द्रवज्रा के हों तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण उपेन्द्रवज्रा के हों तो उसे उपजाति छन्द कहा जाता है। यह कथन प्राचीन छन्दःशास्त्र के मर्मज्ञों का है। यहाँ श्रुतबोधकार ने अग्रलिखित आख्यानकी छन्द का लक्षण लिखकर उपजाति को एक विशिष्ट प्रकार से उल्लिखित किया है, जिसमें इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के पाद नियत चरणों में रखने का आग्रह है। इस तथ्य को वृत्तमुक्तावलीकार ने उपजाति का लक्षण देकर और अधिक स्पष्ट कर दिया है–

यत्रेन्द्रवज्रा प्रथमे तृतीये द्वितीयतुर्योर्यदुपेन्द्रवज्रा ।
सा प्राज्ञवर्यैरुपजातिरुक्ता मनोज्ञविच्छित्तिविशेषयुक्ता ॥

–(वृत्तमुक्तावली ३/१४६)

परन्तु 'वृत्तरत्नाकर', 'छन्दोमञ्जरी' तथा 'सुवृत्ततिलक' में बतलाया गया है कि इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के एकाधिकचरणों का परस्पर प्राप्त होना उपजाति छन्द कहा जायगा। जैसा कि 'वृत्तरत्नाकर' (३/३१) में कहा गया है–

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥

इस कथन के अनुसार अन्य छन्दों के चरणों का परस्पर मेल भी उपजाति नाम से अभिहित किया जायगा। इसीलिए स्वागता और रथोद्धता, इन्द्रवंशा तथा वंशस्थ, इन्द्रवंशा और उपेन्द्रवज्रा अथवा इन्द्रवज्रा आदि के मिश्रण से भी उपजाति छन्द का निर्माण होता है। कहीं-कहीं वसन्ततिलक और इन्द्रवज्रा अथवा वंशस्थ का भी मिश्रण दृष्टिगत होता है। इसे भी उपजाति छन्द की सञ्ज्ञा देगें । इस प्रकार छन्द-मिश्रण, तथा विभिन्न पादव्यवस्था के भेद से उपजाति के अनेक भेद हो सकते हैं। 'छन्दोमञ्जरी' में वृत्तरत्नाकर

के समान ही लक्षण दिया गया है। आचार्य पिङ्गल ने उपजाति का यह लक्षण दिया है– 'आद्यन्तावुपजातयस्ताः।" (पिङ्गलसूत्र ६/२३) आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी उपजाति का लक्षण उद्धृत किया है–

पदानन्तरविन्यासंयोगैर्बहुभिरेतयोः ।
वैचित्र्यजातिरुचिरा भवन्त्येवोपजातयः ॥

–(सुवृत्ततिलक १/२०)

यहाँ 'सुवृत्ततिलक' में भी वृत्तरत्नाकर के समान ही उपजाति छन्द का कथन किया गया है।

उदाहरण[1] –

त० त० ज० गु०गु०		
यत्र द्वयोरप्यनयोस्तु पादौ	——	इन्द्रवज्रापाद (प्रथम)
ज० त० ज० गु०गु०		
भवन्ति सीमन्तिनि चन्द्रकान्ते	——	उपेन्द्रवज्रापाद (द्वितीय)
त० त० ज० गु० गु०		
विद्वद्भिराद्यैः परिकीर्तिता सा	——	इन्द्रवज्रा पाद (तृतीय)
ज० त० ज० गु०गु०		
प्रयुज्यतामित्युपजातिरेषा ।	——	उपेन्द्रवज्रापाद (चतुर्थ)

अथाख्यानकीमाह

आख्यानकी स्यात्प्रकटीकृतार्थे[2] यदीन्द्रवज्राचरणः पुरस्तात् ।
उपेन्द्रवज्रा चरणास्त्रयोऽन्ये मनीषिणोक्ता विपरीतपूर्वा ॥२४॥

श्रुतिः– आख्यानकीलक्षणमुच्यत 'आख्यानकी'ति। हे प्रकटीकृतार्थे ! प्रकटीकृत उत्पादितोऽर्थः कामरूपो यस्यां सा तत्सम्बुद्धौ। यदि पुरस्तात् प्रथमं तु स्याद् भवेदिन्द्रवज्रा-चरणः, अन्ये च शेषास्त्रयाः पादा उपेन्द्रवज्राया भवेयुस्तदा मनीषिणा छान्दसीयेन

---

१. द्वितीयोदाहरण– पाटीरवाटीषु कृतप्रचारस्तरङ्गिणीवारिभवद्विहारः ।
मल्लीलताऽऽलिङ्गनमोदधीरः प्रवाति कान्तेऽद्य सुखं समीरः ॥

२. 'बुधमार्गपाणिन्'– इति पाठान्तरम् ।

विपरीतपूर्वाऽऽख्यानकी एतन्नाम्नी वृत्तजातिरुक्ताऽभिहिता। वृत्तरत्नाकरादौ नाऽस्य लक्षणमुक्तमुपजातिष्वेवाऽन्तर्भावशक्यत्वात्। उपजातिच्छन्दसश्चतुर्दशभेदेष्वेषाऽप्यायाति, यथोक्तं वृत्तरत्नाकरस्य नारायणभट्टीयटीकायाम्–

एकत्र पादे चरणद्वये वा पादत्रये वाऽन्यतरः स्थितश्चेत् ।
तयोरिहान्यत्र तदोहनीयाश्चतुर्दशोक्ता उपजातिभेदाः ॥
(वृत्तरत्नाकरे-नारायणभट्टीये पृ० ८१)

इत्यनुसारमेषाऽऽख्यानकी लक्षणेनोपजातौ गच्छत्यन्तर्भावत्वम् । पिङ्गलसूत्रे लक्षणं कथितम्– "आख्यानिकी तौ ज् गौ ग् ज तौ जगौ ग्" (पि०सू० ५/३८)। वृत्तमुक्तावल्यामस्य वृत्तस्य लक्षणमेवं निगदितम्–

आख्यानकीं तां प्रवदन्ति नित्यं यदीन्द्रवज्राचरणेन युक्तान् ॥
उपेन्द्रवज्राचरणान् वहेत् त्रीन् विशेष विच्छित्तिमतः कवीन्द्राः ॥
(वृत्तमुक्तावल्याम् ३/१४८)

अन्वय– (हे) प्रकटीकृतार्थे ! यदि पुरस्ताद् इन्द्रवज्राचरणः स्याद् अन्ये च त्रयः उपेन्द्रवज्राचरणाः (भवेयुः), (तर्हि) मनीषिणा विपरीतपूर्वाऽऽख्यानकी उक्ता।

स्मृतिव्याख्या–जिस छन्द में प्रथमचरण इन्द्रवज्रा का हो और अन्य तीन चरण उपेन्द्रवज्रा के हों तो विद्वान् कवि उसे आख्यानकी छन्द के नाम से अभिहित करते हैं।

यद्यपि यहाँ आख्यानकी का लक्षण वृत्तरत्नाकरादि ग्रन्थों के अनुसार उपजाति में ही अन्तर्भूत हो जाता है। जैसा कि वृत्तरत्नाकर की 'नारायणभट्टीय' टीका में कहा गया है कि इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा का एक भी चरण में प्रयोग क्यों न हो उसे उपजाति छन्द ही कहा जायगा। इस प्रकार उपजाति छन्द के चौदह भेद हो जाते हैं–

एकत्र पादे चरणद्वये वा पादत्रये वाऽन्यतरः स्थितश्चेत् ।
तयोरिहान्यत्र तदोहनीयाश्चतुर्दशोक्ता उपजातिभेदाः ॥
(वृत्तरत्नाकर-नारायणभट्टीय-टीका, पृ० ८१)

तथापि पिङ्गलादि आचार्यों के द्वारा उक्त होने के कारण यहाँ श्रुतबोधकार ने आख्यानकी का लक्षण किया है। वृत्तमुक्तावली में भी श्रीकृष्णभट्ट ने आख्यानकी का लक्षण श्रुतबोध के अनुसार ही किया है, यथा–

"आख्यानकीं तां प्रबदन्ति नित्यं यदीन्द्रवज्राचरणेन युक्तान् ।
उपेन्द्रवज्राचरणान् वहेत् त्रीन् विशेषविच्छित्तिमतः कवीन्द्राः ॥"
(वृत्तमुक्तावली ३/१४८)

उपजाति तथा आख्यानकी में भेद प्रदर्शित करने हेतु दोनों के लक्षण पृथक्त्वेन किये गये हैं। आख्यानकी छन्द प्राचीन आचार्यों के द्वारा भी मान्य है यथा पिङ्गलसूत्र (५/३८) में आख्यानिकी तौ ज् गौ ग् जतौ जगौ ग् ।"

उदाहरण[१]— त० त० ज० गु०गु०
आख्यानकी स्यात्प्रकटीकृतार्थे — इन्द्रवज्रापाद ।
ज० त० ज० गु०गु०
यदीन्द्रवज्राचरणः एरस्ताद् — उपेन्द्रवज्रापाद।
ज० त० ज० गु० गु०
उपेन्द्रवज्रा चरणास्त्रयोऽन्ये — उपेन्द्रवज्रापाद।
ज० त० ज० ग०ग०
मनीषिणोक्ता विपरीतपूर्वा — उपेन्द्रवज्रापाद।

यहाँ प्रथमपाद इन्द्रवज्रा का तथा शेष तीन पाद उपेन्द्र वज्रा के हैं, अतः इसे आख्यानकी छन्द कहेगें।

अथ रथोद्धतामाह

आद्यमक्षरमतस्तृतीयकं सप्तमं च नवमं तथान्तिमम् ।
दीर्घमिन्दुमुखि यत्र[३] जायते तां वदन्ति कवयो रथोद्धताम् ॥२५॥

श्रुतिः— 'आद्ये'त्यादिना रथोद्धतां लक्षयति। हे इन्द्रमुखि ! चन्द्रानने ! यत्र यस्मिन् छन्दसि

---

१. द्वितीयोदाहरण— दीपाः स्थितं वस्तु विभावयन्ति ।
कुलप्रदीपास्तु भवन्ति केचित् ।
चिरव्यतीतानपि पूर्वजान्ये
प्रकाशयन्ति स्वगुणप्रकर्षात् ॥

२. 'दीर्घमस्तु ननु'— इति पाठान्तरम् । 'दीर्घतां भजति'— इति पाठान्तरम् ।

३. 'यत्र सन्मते'— इति पाठान्तरम् । 'यत्र पूजिताः' इति पाठान्तरम् ।

वर्णा एकादश भवन्ति चरणेषु, तेषु वर्णेष्वाद्यं प्रथमं तृतीयकं तृतीयं सप्तमं नवमं तथान्तिम-मेकादशाक्षरं दीर्घं द्विमात्रिकं जायते क्रियते तां वृत्तजातिं कवयो विद्वत्कोविदा रथोद्धतां वदन्ति कथयन्ति। पिङ्गलसूत्रे (६/२८) ऽस्य लक्षणमुक्तम्– "रथोद्धता र्नौ र्लौग्।" वृत्तरत्नाकरेऽपि रथोद्धतालक्षणं निगदितम्– "रान्नराविह रथोद्धता लगौ।" (वृत्तरत्नाकरे ३/३८) अपि चोक्तं छन्दोमञ्जयमि् (२/४९)– "रात्परैर्नरलगै रथोद्धता।" तथोक्तं सुवृत्ततिलके (१/२३)– "रनैरन्वितं युक्तं लघुना गुरुणा तथा। ख्यातं रथोद्धतानाम वृत्तमेकादशाक्षरम्।" एवमेवोक्तं श्रीकृष्णभट्टेन– "रोत्तरं नगणरौ लघुर्गुरुः कार्यमित्युदयशालि यत्पदम्। सा फणीन्द्रमुखपङ्कजोद्गता राजते सुवितता रथोद्धता।। (वृत्तमुक्तावल्याम् ३/१२९)

अन्वय– (हे) इन्द्रमुखि! यत्राऽऽद्यम् अतः तृतीयकं सप्तमं नवमं तथा च अन्तिममक्षरं दीर्घ जायते, कवयः तां रथोद्धतां वदन्ति।

स्मृतिव्याख्या–जिसके प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर हों तथा इनमें प्रथम, तृतीय, सप्तम, नवम और एकादश वर्ण दीर्घ हों तो उसे कविगण रथोद्धता छन्द के नाम से अभिहित करते हैं। रथोद्धता छन्द का लक्षण आचार्य पिङ्गल ने गणानुसार लिखा है और बतलाया है कि जिस छन्द के प्रत्येक चरण में रगण, नगण तथा लघु, गुरु क्रम से हों उसे रथोद्धता छन्द कहा जाता है– "रथोद्धता र्नौ र्लौग्।" (पिङ्गल सूत्र ६/२८) वृत्तरत्नाकर, छन्दोमञ्जरी तथा सुवृत्ततिलक में भी रथोद्धता का यही लक्षण शब्दान्तर से बतलाया गया है। यथा–

"रान्नराविह रथोद्धता लगौ ।"– (वृत्तरत्नाकर ३/३८)
"रात्परैर्नरलगै रथोद्धता।"– (छन्दोमञ्जरी २/४९)
"रनैरन्वितं युक्तं लघुना गुरुणा तथा ।
ख्यातं रथोद्धता नाम वृत्तमेकादशाक्षरम् ।।"– (सुवृत्ततिलक १/२३)

'वृत्तमुक्तावली' में भी रथोद्धता का लक्षण उद्धृत है–

"रोत्तरं नगणरौ लघुर्गुरुः कार्यमित्युदयशालि यत्पदम् ।।
सा फणीन्द्रमुखपङ्कजोद्गता राजते सुविततता रथोद्धता ।।" (वृत्तमुक्तावली ३/१२९)

उदाहरण[1]– र० न० र० ल०गु०
आद्यमक्षरमतस्तृतीयकं —— प्रथम पाद।
१ २ ३ ४५६७ ८ ९१०११

---

१. द्वितीयोदाहरण– राधिका दधिविलोडनस्थिता कृष्णवेणुनिनदैरथोद्धता ।
यामुनं तटनिकुञ्जमञ्जसा सा जगाम सलिलाहृतिच्छलात् ।।

र० न० र० ल०गु०
सप्तमं च नवमं तथान्तिमम् —— द्वितीय पाद।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११

तृतीय तथा चतुर्थ चरण भी पूर्वोक्तानुसार समझने चाहिए।

अथ स्वागतामाह

अक्षरं च नवमं दशमं चेद्व्यत्ययाद्भवति यत्र विनीते[1] !
प्रोक्तमेणनयने[2] यदि सैव स्वागतेति कविभिः कथिताऽसौ ॥२६॥

श्रुतिः– 'अक्षर' मिति स्वागता लक्ष्यते। हे विनीते ! हे विनम्रस्वभावे ! एणनयने ! हरिणाक्षि! यत्र यस्मिन् वृत्ते व्यत्ययाद् वैपरीत्येन नवममक्षरं दशमवद्दशमं नवमवत् स्यात्। नवमाक्षरं लघु दशमाक्षरं गुरु भवेताम्। आशयोऽयमत्र वर्तते यद् रथोद्धतावृत्ते नवममक्षरं गुरु भवति दशमं चाऽक्षरं लघु स्यात्, किन्तु स्वागतायां तु नवममक्षरं लघु दशमं चाऽक्षरं गुरु भवति। एतद्वृत्तं स्वागतेति नाम्ना निगदितं कविभिः काव्यकृद्भिरिति। एतल्लक्षणं पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे (६/२९) प्रोक्तम्– "स्वागता र्नौ भ्गौग्।।" तथा च वृत्तरत्नाकरे (३/३९)– "स्वागतेति रनभाद्गुरुयुग्मम्।" छन्दोमञ्जर्याम् (२/५०)– "स्वागता रनभगैर्गुरुणा च।" क्षेमेन्द्रेणोक्तम्– "गुरुद्वययुतेरन्ते रनभैरुपलक्षिता। गदितं स्वागता नाम वृत्तमेकादशाक्षरम्।" (सुवृत्ततिलके १/२४) श्रुतबोधानुरूपमेव स्वागताया लक्षणमुक्तं वृत्तमुक्तावल्याम्– "अक्षरं तु नवमं दशमं चेद् व्यत्ययेन निहितं खलु यस्याम्। एतदेव हि रथोद्धतवृत्तं स्वागतेति कविभिःकृतनाम।" (वृत्तमुक्तावल्याम् ३/१३१)

अन्वय–हे विनीते ! एणनयने ! यत्र नवमं दशमं चाऽक्षरं चेद् व्यत्ययात् प्रोक्तं भवति यदि सैवाऽसौ कविभिः स्वागतेति कथिता।

स्मृतिव्याख्या–जहाँ रथोद्धता छन्द के नवम तथा दशम अक्षर विपरीत हों अर्थात् रथोद्धता में नवम अक्षर गुरु तथा दशम लघु होता है, इसके विपरीत नवम अक्षर जहाँ लघु और दशम वर्ण गुरु हो तो उसे कवि-जन स्वागता छन्द कहते हैं। 'पिङ्गलसूत्र' में स्वागता का लक्षण देते हुए कहा गया है कि जहाँ रगण, नगण, भगण तथा दो गुरु हों तो उसे स्वागता

---

१. 'प्राक्तनवृत्ते'– इति पाठान्तरम्। 'हि वृत्ते'– इति पाठान्तरम्।
२. 'प्रोक्तमुत्तममते'– इति पाठान्तरम्। 'पूर्ववर्णितसमं'– इति पाठभेदः।

छन्द कहा जाता है– "स्वागता र्नौ भ्गौग् ।" (पिङ्गलसूत्र ६/२९) केदारभट्ट ने वृत्तरत्नाकर (३/३९) में तथा गङ्गादास ने छन्दोमञ्जरी में स्वागता का यही लक्षण उद्धृत किया है–

"स्वागतेति रनभाद्गुरुयुग्मम् ।" (वृत्तरत्नाकर ३/३९)

"स्वागता रनभगैर्गुरुणा च।" (छन्दोमञ्जरी २/५०)

सुवृत्त तिलक में आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी स्वागता का लक्षण समुद्धृत किया है– "गुरुद्वययुतैरन्ते रनभैरुपलक्षिता। गदितं स्वागता नाम वृत्तमेकादशाक्षरम् ।"– (सुवृत्ततिलक १/२४) वृत्तमुक्तावली में भी इसका लक्षण दिया गया है, जो श्रुतबोधकार के अनुसार ही है– "अक्षरं तु नवमं दशमं चेद् व्यत्ययेन निहितं खलु यस्याम्। एतदेव हि रथोद्धतवृत्तं स्वागतेति कविभिः कृतनाम।" (वृत्तमुक्तावली ३/१३१)

प्रायः सर्वत्र रथोद्धता छन्द का लक्षण यही दिया गया है।

उदाहरण[1]– र० न० भ० गु०गु०
अक्षरं च नवमं दशमं चेद् —— प्रथम पाद।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११
र० न० भ० गु०गु०
व्यत्ययाद्भवति यत्र विनीतैः। —— द्वितीय पाद।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११

स्वागता के अन्य चरणो को भी पूर्ववत् समझना चाहिए।

अथ वैश्वदेवीमाह

ह्रस्वो वर्णः स्यात्ससमो यत्र बाले[2]! तद्वद्बिम्बोष्ठि न्यस्त एकादशाद्यः । बाणैर्विश्रामस्तत्र चेद्वा तुरङ्गैर्नाम्ना निर्दिष्टा सुभ्रु[3] सा वैश्वदेवी ॥२७॥

श्रुतिः– 'ह्रस्व' इति वैश्वदेवी नाम वृत्तं लक्षयति। हे बाले ! षोडशि ! विम्बोष्ठि ! पक्वबिम्बफलसदृशरक्ताधरोष्ठि ! यत्र यस्मिन् वृत्ते ससमो वर्णो ह्रस्वो लघुः स्यात् तद्वद् एवमेवैकादशाद्यो दशमो वर्णोऽपि ह्रस्वो न्यस्तो निक्षिप्तः। तथा च बाणैः पञ्चभिस्तुरङ्गैः सप्तभिश्चेद् यदि विश्रामो यतिः स्यात् तर्हि सुभ्रु ! सुष्ठु भ्रुवौ यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ ! सा

---

१. द्वितीयोदाहरण– रत्नभङ्गविमलैर्गुणतुङ्गैरर्थिनामभिमतार्पणसक्तैः।
स्वागताभिमुखनम्रशिरस्कैर्जीव्यते जगति साधुभिरेव ॥

२. 'तद्वच्छन्दोज्ञानार्थिन्'– इति पाठान्तरम् ।

३. 'वत्स'– इति पाठान्तरम् ।

वृत्तजातिर्वैश्वदेवी नाम्ना निर्दिष्टा कथिता वर्तते। एतस्मिञ्छन्दसि द्वादशाक्षराणि प्रत्येकचरणे भवन्ति। पिङ्गलसूत्रेऽस्य लक्षणं निगदितम्– **"वैश्वदेवी मौ याविन्द्रिय ऋषयः।"** (पि०सू०६/४७) तदुक्तं वृत्तरत्नाकरे (३/६२)– **"पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ।"** एवमेव कथितं छन्दोमञ्जर्याम् (२/६२)– **"बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ ।"** आचार्येण क्षेमेन्द्रेण नाऽस्य लक्षणमलेखि सुवृत्ततिलके। नाऽस्य चर्चावृत्तमुक्तावल्यामेवोपलभ्यतेऽप्रसिद्धत्वाद् वृत्तस्य।

अन्वय– (हे) बाले ! बिम्बोष्ठि ! यत्र सप्तमो वर्णो ह्रस्वः स्यात् तद्वत् एकादशाद्यो (वर्णो ह्रस्वो) न्यस्तः। तत्र बाणैर्वा तुरङ्गैः विश्रामश्चेत् (तर्हि) सुभ्रु ! सा वैश्वदेवी नाम्ना निर्दिष्टा।

स्मृतिव्याख्या– प्रत्येक चरण में द्वादश अक्षर हों तथा सभी चरणों में सप्तम और दशम वर्ण ह्रस्व हों। पाँच तथा सात अक्षरों पर यति की व्यवस्था हो तो वह वैश्वदेवी नामक छन्द कहा जाता है। इस छन्द के विषय में 'सुवृत्ततिलक' और वृत्तमुक्तावली में कोई चर्चा प्राप्त नहीं होती है। आचार्य पिङ्गल ने लिखा है। कि यदि प्रत्येक चरण में दो मगण तथा दो यगण हों तो उसे वैश्वदेवी छन्द कहा जाता है। यहाँ पाँच तथा सात वर्णों पर विराम का भी उल्लेख किया गया है–

"वैश्वदेवी मौ याविन्द्रिय ऋषयः ।" (पि०सू० ६/४७)

'वृत्तरत्नाकर' तथा 'छन्दोमञ्जरी' में भी इसका लक्षण यही उद्धृत है–

१. **"पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ"** (वृत्तरत्नाकर ३/६२)

२. **बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ।"** (छन्दोमञ्जरी २/७२)

उदाहरण[१]**–**

म० म० य० य०
ह्रस्वौ वर्णौ स्यात्सप्तमो यत्र बाले — प्रथम पाद।
१ २ ३४ ५ ६७ ८ ९१० १११२

म० म० य० य०
तद्वद्बिम्बोष्ठि न्यस्त एकादशाद्यः — द्वितीय पाद।
१२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९१०१११२

लघु-गुरु तथा गणों की व्यवस्था वैश्वदेवी के अन्य चरणों में भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

---

१. अर्चामन्येषां त्वं विहायाऽमराणामद्वैतेनैकं विष्णुमभ्यर्च्य भक्त्या ।
तत्राऽशेषात्मन्यर्चिते भाविनी ते भ्रातः ! सम्पन्नाऽऽराधना वैश्वदेवी ॥

अथ तोटकमाह

**सतृतीयकषष्ठमनन्तरते[1] ! नवमं विरतिप्रभवं गुरु चेत् ।
घनपीनपयोधरभारनते ! ननु तोटकवृत्तमिदं कथितम् ॥२८॥**

श्रुतिः– 'सतृतीयकेत्यादिना तोटकवृत्तं लक्ष्यते। हे अनन्तरते ! अनन्ताऽपरिमिता रतिर्यस्या सा तत्सम्बुद्धौ। हे घनपीनपयोधरभारनते ! कठिननिविडकुचभाराधिक्येन नम्रीभूते ! यस्मिन् वृत्ते सतृतीयकषष्ठ तृतीयषष्ठवर्णसहितं नवमं नवमाक्षरं विरतिप्रभवं द्वादशाक्षरं च गुरु दीर्घं स्याच्चेत् तर्हि, तोटकवृत्तं तोटकनामकं छन्दः कथितं प्रतिपादितं ननु निश्चयरूपेण। एतद्वृत्तं 'तोटकमिति नाम्ना प्रसिद्धमित्यर्थः। अत्रोक्तं पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे (६/३७) ऽस्य लक्षणम्– **"तोटकं सः ।"** वृत्तरत्नाकरे (३/४८) प्रोक्तम्– **"इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्।"** तथोक्तं छन्दोमञ्जर्याम्-**"वद तोटकमब्धिसकारयुतम्।"** (छन्दोमञ्जर्याम् २/७०)। क्षेमेन्द्रोऽत्र ब्रूते-**"सकारैरन्वितं वृत्तं चतुर्भिर्युगपत्स्थितैः। उदितं तोटकं नाम वृत्तज्ञैर्द्वादशाक्षरम् ।"** (सुवृत्ततिलके १/२५)। श्रीकृष्णभट्टेनाऽस्य लक्षणं वृत्तमुक्तावल्यां व्यलेखि-**"अतिचारुसकारचतुष्कभृतं चरणं खलु यस्य विभाति कृतम्। इति तोटकवृत्तमिदं कथितं कविराजिविराजिगुणग्रथितम् ।"** (वृत्तमुक्तावल्याम् ३/१६६)।

अन्वय– (हे) अनन्तरते ! घनपीनपयोधरभारनते ! सतृतीयकषष्ठं नवमं विरतिप्रभवं (च) गुरु (स्यात्) चेत् (तर्हि) इदं तोटकवृत्तं ननु कथितम् ।

स्मृतिव्याख्या– तोटक छन्द में बारह अक्षर प्रत्येक चरण में रखे जाते हैं। प्रत्येक चरण में तृतीय, षष्ठ, नवम और द्वादश अक्षर गुरु रहते हैं। इसे तोटक छन्द की सञ्ज्ञा प्राप्त है। पिङ्गल सूत्र में कहा गया है। कि यदि चार सगण प्रत्येक चरण में हो तो उसे तोटक छन्द कहते हैं– **"तोटकं सः' (पिङ्गल सू० ६/३७)।** अन्य ग्रन्थों में तोटक वृत्त का यही लक्षण दिया गया है उनके लक्षण यहाँ उद्घृत किये जाते हैं–

१. 'इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्' (वृत्तरत्नाकर ३/४८)
२. 'वद तोटकमब्धिसकारयुतम्' (छन्दोमञ्जरी २/७०)
३. सकारैरन्वितं वृत्तं चतुर्भिर्युगपत्स्थितैः ।
उदितं तोटकं नाम वृत्तज्ञैर्द्वादशाक्षरम् ॥ (सुवृत्ततिलक १/२५)

---

१. –'मुदात्तमते'– इति पाठान्तरम् । . . . 'मिहाक्षरकं' इतिपाठान्तरम् ।
२. 'अधिपिङ्गलशास्त्रमुपात्तरते'– इति पाठान्तरम् ।
'कविभिः प्रथितैर्भुवनत्रितये'– इति पाठभेदः ।

४. अतिचारु सकारचतुष्कभृतं चरणं खलु यस्य विभाति कृतम् ।
इति तोटकवृत्तमिदं कथितं कविराजिविराजिगुणग्रथितम् ।
(वृत्तमुक्तावली ३/१६६)

उदाहरण[१]– स० स० स० स०
संतृतीयकषष्ठमनन्तरंतें —— प्रथम पाद ।
१२३४ ५६७८९१०१११२

स० स० स० स०
नवमं विरतिप्रभवं गुरु चेत् —— द्वितीय पाद ।
१२३ ४५६७८९ १०११ १२

इसी प्रकार तोटक छन्द के शेष चरणों में गुरु लघु की व्यवस्था जाननी चाहिए।

अथ भुजङ्गप्रयातमाह

यदाद्यं चतुर्थं तथा सप्तमं चेत् तथैवाक्षरं ह्रस्वमेकादशाद्यम् ।
शरच्चन्द्रविद्वेषिवक्त्रारविन्दे तदुक्तं कवीन्द्रैर्भुजङ्गप्रयातम् ॥२९॥

श्रुतिः– 'यदाद्यमिति भुजङ्गप्रयातं लक्ष्यते। हे शरच्चन्द्रविद्वेषिवक्त्रारविन्दे ! शारदीयपूर्णिमोदितचन्द्रस्य विद्वेषिवक्त्रं मुखमेवाऽरविन्दं कमलं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ। यदा चेद् आद्यं प्रथमं तथा चतुर्थं चतुर्थाक्षरं, सप्तमं सप्तमाक्षरं तथैव एवमेव एकादशाद्यं दशमाक्षरं हस्वं स्यादिति शेषः। तद् वृत्तं कवीद्रैः कविप्रवरैर्भुजङ्गप्रयातं नामोक्तं कथितम्। पिङ्गलाचार्येण लक्षणमस्य लिखितं– "भुजङ्गप्रयातं यः" (पि०सू०६/४३) छन्दोमञ्जर्यामप्युक्तम्– "भुजङ्गप्रयातं चतुभिर्यकारैः।" (छन्दोमञ्जर्याम् २/६९) वृत्तरत्नाकरे (३/५५) कथितम्– "भुजङ्गप्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भिः।" एतदेव लक्षणं भणितं वृत्तमुक्तावल्याम्– "चतुः सङ्ख्यका यस्य पादे यकाराः सदा मोदयन्ते समन्तादुदाराः। भुजङ्गप्रयाताभिधं वृत्तमेतत्सुधापातिहेतुः सतां मानसे तत् ।" (वृत्तमुक्तावल्याम् ३/१५६)

---

१. द्वितीयोदाहरण– त्यज तोटकमर्थनियोगकरं प्रमदाऽधिकृतंव्यसनोपहतम् ।
उपधाभिरशुद्धमतिं सचिवं नरनायक भीरुकमायुधिकम् ॥

२. 'दधद्भक्तिमाचार्यपादारविन्दे'– इति पाठभेदः
"जगन्मानितैःपण्डितैश्छान्दसीयैः'– इति पाठान्तरम् ।

३. 'तु वृत्तम्'– इति पाठान्तरम् ।

अन्वय– (हे) शरच्चन्द्रविद्वेषिवक्त्रारविन्दे! यदाद्यं चतुर्थं तथा सप्तमं तथैव एकादशाद्यमक्षरं ह्रस्वं चेत् (भवेत्) तदा कवीन्द्रैः तद् भुजङ्गप्रयातमुक्तम् ।

स्मृतिव्याख्या– जिस छन्द के प्रत्येक चरण में प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम वर्ण ह्रस्व हो और शेष आठ वर्ण दीर्घ हो तो उसे भुजङ्गप्रयात छन्द कहते हैं। इसमें प्रत्येक चरण १२-१२ अक्षरों का होता है। आचार्य पिङ्गल ने इस छन्द का लक्षण कहा है–"भुजङ्गप्रयातं यः।" (पि०सू० ६/४३) अर्थात् जिस वृत्त में चार यगण प्रत्येक पाद में रखे जायँ उसे भुजङ्ग प्रयात छन्द कहा जाता है। वृत्तरत्नाकर, छन्दोमञ्जरी, वृत्तमुक्तावली आदि ग्रन्थो में भी भुजङ्गप्रयात का यही लक्षण सुस्पष्टतः उद्धृत किया गया है–

१. 'भुजङ्गप्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भिः।'– (वृत्तरत्नाकर ३/५५)

२. 'भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः'– (छन्दोमञ्जरी २/६९)

३. "चतुः सङ्ख्यका यस्य पादे यकाराः सदा मोदयन्ते समन्तादुदाराः।
भुजङ्गप्रयाताभिधं वृत्तमेतत्सुधापातिहेतुः सतां मानसे तत्।'
(वृत्तमुक्तावली ३/१५६)

उदाहरण[१]–

य० य० य० य०
यदाद्यं चतुर्थं तथा सप्तमं चेत् — प्रथम पाद।
१ २३ ४ ५६ ७ ८ ९ १० ११ १२

य० य० य० य०
तथैवाऽक्षरं ह्रस्वमेकादशाद्यम् — द्वितीय पाद।
१२३ ४५ ६ ७८ ९ १० ११ १२

शेष चरणों में लघु गुरु अथवा गणों की व्यवस्था इसी क्रम से रहेगी।

अथ द्रुतविलम्बितमाह

अयिकृशोदरि[२]! यत्र चतुर्थकं गुरुं च सप्तमकं दशमं तथा ।
विरतिजं[३] च तथैव विचक्षणैर्द्रुतविलम्बितमित्युपदिश्यते ॥३०॥

---

१. द्वितीयोदाहरणम्– सदारात्मजज्ञातिभृत्यो विहाय
स्वमेतं ह्रदं जीवनं लिप्समानः ।
मया क्लेशितः कालियेत्थं कुरु त्वम्,
भुजङ्ग ! प्रयातं द्रुतं सागराय ॥

२. 'वशंवद'– इति पाठान्तरम् । 'भवति छन्दसि'– इति पाठभेदः ।

३. 'विरतिगम्'– इति पाठान्तरम् ।

With Best Compliments
From Author and Publisher

श्रुतिः— 'अयि' इत्यादिना द्रुतबिलम्बितं लक्षयति। अयि हे कृशोदरि! कृशमुदरं यस्याः सा कृशोदरी तत्सम्बुद्धौ! क्षीणोदरि! यत्र वृत्ते यस्मिन् चतुर्थकं चतुर्थाक्षरं, सप्तमकं सप्तममक्षरं दशमं दशमाक्षरं च तथैव विरतिजं द्वादशमक्षरं च गुरु स्यात् चेत्तर्हि विचक्षणैर्विद्वज्जनै र्द्रुतबिलम्बितमेतन्नाम वृत्तमुपदिश्यतेऽभिधीयते। द्रुतबिलम्बितच्छन्दसो लक्षणं पिङ्गलच्छन्दः सूत्रेऽभिहितं तद् यथा— "द्रुतविलम्बितं न्भौ भ्रौ।" (पि०सू० ६/३६) वृत्तरत्नाकर (३/४९) छन्दोमञ्जर्यो (२/७४) रेतल्लक्षणमुक्तम्— "द्रुतविलम्बितमाह नभौभरौ।" क्षेमेन्द्रोऽपि लक्षणमस्य कथयति—"अभिव्यक्तं नभभैरक्षैर्द्वादशाक्षरम्। वदन्ति वृत्तजातिज्ञा वृत्तं द्रुतबिलम्बितम्।" (सुवृत्ततिलके १/२७) एतद्वृत्तं श्रीकृष्णभट्टेन 'सुन्दरी' ति नाम्ना निगदितम्— "नगणभद्वितयीरगणान्वितो भवति यच्चरणः सुखदायकः। जयति वृत्तमिदं खलु सुन्दरीत्युदितनामकमद्भुतभोगिना।" (वृत्तमुक्तावल्याम् ३/१७३) एतत्तु द्रुतबिलम्बितमेव वृत्तम्।

अन्वय— अयि कृशोदरि! यत्र चतुर्थकं सप्तमकं च तथा दशमं तथैव विरतिजं च (अक्षरं) गुरु (स्यात्), विचक्षणैर्द्रुतबिलम्बितमित्युपदिश्यते।

स्मृतिव्याख्या— जिस छन्द में द्वादश अक्षरों के प्रत्येक चरण होते हैं तथा इनमें चतुर्थ, सप्तम, दशम तथा द्वादश वर्ण गुरु रखे जाते हैं तो उसे छन्दःशास्त्र के विचक्षण विद्वान् द्रुतविलम्बित नामक छन्द की सञ्ज्ञा प्रदान करते हैं। पिङ्गलसूत्रकार ने द्रुतविलम्बित वृत्त का लक्षण करते हुए कहा है कि यदि नगण, मगण, भगण तथा रगण जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रम से हों उसे द्रुतविलम्बित छन्द कहा जाता है— "द्रुतविलम्बितं न्भौ भ्रौ।" (पिङ्गलसूत्रे ६/३६) यही लक्षण वृत्तरत्नाकर (३/४९) तथा छन्दोमञ्जरी (२/७४) में भी दिया गया है। दोनों का लक्षणवाक्य एक ही है—"द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।" सुवृत्ततिलक में भी द्रुतविलम्बित का लक्षण दिया गया है— "अभिव्यक्तं नभभैरक्षैर्द्वादशाक्षरम्। वदन्ति वृत्तजातिज्ञा वृत्तं द्रुतविलम्बितम्।" (सुवृत्ततिलक १/२७) बृत्तमुक्तावली में द्रुतविलम्बित छन्द का लक्षण देते हुए इस वृत्तं का नाम 'सुन्दरी' कहा गया है—

"नगणभद्वितयीरगणान्वितो भवति यच्चरणः सुखदायकः।
जयति वृत्तमिदं खलु सुन्दरीत्युदितनामकमद्भुतभोगिना॥"

(वृत्तमुक्तावली ३/१७६)

कदाचित् गेय में रमणीयता होने के कारण श्रीकृष्णभट्ट जी ने इस छन्द का नाम सुन्दरी रखा होगा अथवा सुन्दरी की द्रुतविलम्बित गति का अवलोकन करके इसका नाम सहृदयों ने सुन्दरी रख दिया होगा।

उदाहरण[१]— न० भ० भ० र०
अयि कृशोदरि यत्र चतुर्थकं —— प्रथम पाद ।
१ २ ३ ४ ५६ ७८ ९१०११ १२
न० भ० भ० र०
गुरु च संसमकं दशमं तथा —— द्वितीय पाद ।
१२ ३ ४५६७ ८९ १०१११२

द्रुतविलम्बित के शेष चरणो में लघु गुरु अथवा गणों का यही क्रम रहेगा ।

अथ प्रमिताक्षरामाह

यदि तोटकस्य गुरु पञ्चमकं विहितं विलासिनि[२] तदक्षरकम् ।
रससङ्ख्यकं गुरु न चेद[३]बले प्रमिताक्षरेति कविभिः कथिता ॥३१॥

श्रुतिः— यदि तोटकस्येति प्रमिताक्षरा लक्ष्यते। हे अबले ! हे रमणि ! विलासिनि ! विलासशीले ! यदि चेत्तोटकस्योक्ततोटकवृत्तस्य चरणेषु पञ्चमकं पञ्चमाक्षरं गुरु विहितं स्यात्। रससङ्ख्यकं तदक्षरं षष्ठमक्षरं गुरु न स्यात् चेत् तर्हि कविभिः कोविदैः प्रमिताक्षरेति एतन्नामधेयं वृत्तं कथिताऽभिहितम्। अत्र पिङ्गलसूत्रे (६/४५) ऽस्य लक्षणमुक्तम्— "प्रमिताक्षरा स्जौ सौ।" वृत्तरत्नाकरे (३/६०) लक्षणमस्यनिगदितम्- "प्रमिताक्षरा सजससैरुदिता।" छन्दोमञ्जर्या (२/७३) मुक्तम्— "प्रमिताक्षरा सजससैःकथिता।" सुवृत्ततिलके वृत्तमुक्तावल्यां च नाऽस्य लक्षणं निगदितम्।

अन्वय—हे विलासिनि ! अबले ! यदि तोटकस्य पञ्चमकं गुरु विहितं, रससङ्ख्यकं तदक्षरं चेद् गुरु (स्यात् तर्हि) कविभिः प्रमिताक्षरेति कथिता।

स्मृतिव्याख्या—यदि तोटकछन्द के प्रत्येक चरण का पञ्चम वर्ण गुरु हो तथा षष्ठ वर्ण लघु हो तो कवियों के द्वारा उसे प्रमिताक्षरा छन्द कहा जाता है। पिङ्गलसूत्रकार इस छन्द का लक्षण बतलाते हुए लिखते हैं कि यदि प्रत्येक चरण में सगण, जगण, तथा दो सगण क्रम से हो तो उसे प्रमिताक्षरा छन्द कहते हैं। यथा— "प्रमिताक्षरा स्जौ सौ।"

---

१. द्वितीयोदाहरण— तरणिजापुलिने नववल्लवीपरिषदा सह केलिकुतूहलात् ।
द्रुतविलम्बितचारुविहारिणं हरिमहं हृदयेन सदा वहे ॥
२. 'शुभोदय' – इति पाठभेदः। 'भवेदिह'— इतिपाठान्तरम् ।
३. चेन्नियतम्'— इति पाठान्तरम् । 'चेन्न भवेत्'— इति पाठान्तरम् ।

(पि॰सू॰ ६/४५)। वृत्तरत्नाकर तथा छन्दोमञ्जरी में भी इसका लक्षण उद्धृत किया गया है–

१. "प्रमिताक्षरा सजससैरुदिता ।"– (वृत्तरत्नाकर ३/६०)

२. "प्रमिताक्षरा सजससैः कथिता"– (छन्दोमञ्जरी २/७६)

वृत्तमुक्तावली और सुवृत्ततिलक में इसका लक्षण नहीं कहा गया है।

उदाहरण[1]–

स॰ ज॰ स॰ स॰
यदि तोटकस्य गुरु पञ्चमकं —— प्रथमपाद।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२

स॰ ज॰ स॰ स॰
विहितं विलासिनि तदक्षरकम् । —— द्वितीयपाद।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२

इसी प्रकार प्रमिताक्षरा के शेष चरणों में लघु गुरु की व्यवस्था समझनी चाहिए।

अथ हरिणीप्लुतामाह

प्रथमाक्षरमाद्यतृतीययोर्द्रुतविलम्बितकस्य च पादयोः ।
यदि चेन्न तदा कमलेक्षणे भवति सुन्दरि सा हरिणीप्लुता ॥३२॥

श्रुतिः– 'प्रथमाक्षर'मिति हरिणीप्लुता लक्ष्यते। हे कमलेक्षणे! पद्माक्षि! सुन्दरि! शुभाङ्गे! यदि चेद् द्रुतविलम्बितकस्य पूर्वोक्तस्य छन्दस आद्यतृतीययोः पादयोः प्रथमतृतीयचरणयोः प्रथमाक्षरं न स्यात्तदा तर्हि सा हरिणीप्लुता नाम वृत्तजातिर्भवति। अस्य वृत्तस्य प्रथम तृतीययोः पादयोरेकादशवर्णा भवन्ति द्वितीय-चतुर्थचरणयोश्च द्वादशवर्णाः स्युः। एतदर्धसमवृत्तं वरीवर्ति। पिङ्गलसूत्रेऽस्य लक्षणं प्रोक्तम्–"हरिणप्लुता सौ स् लौ ग् न् भौ भ्रौ।" (पि॰सू॰ ५/४०)। वृत्तरत्नाकरे छन्दोमञ्जर्यां वृत्तमुक्तावल्यां च वृत्तमेतद् हरिणप्लुतेति कथ्यते। तल्लक्षणमुक्तं तद्तद्ग्रन्थेषु। यथा– "सयुगात्सलघूविषमे गुरुर्युजिनभौ

---

१. द्वितीयोदाहरण– अमृतस्य शीकरमिवोद्गिरन्ती
रदमौक्तिकांशुलहरीच्छुरिता ।
प्रमिताक्षरा मुररिपोर्भणितिर्
ब्रजसुभ्रुवामभिजहार मनः ।

२. 'भवतीह सा'– इति पाठान्तरम्

३. 'सकलवृत्तचये'– इति पाठान्तरम्

भरकौ हरिणप्लुता।" (वृत्तरत्नाकरे ४/८) छन्दोमञ्जर्याम् (२/१८१)– "मात्सौ जौ भरसंयुतौ करिबाणखैर्हरिणप्लुता।" वृत्तमुक्तावल्यामुक्तम्– "पठितं रहितप्रथमाक्षरं द्रुतविलम्बितमाद्यतृतीययोः। गदिता कविभिर्मतिशालिभिर्भवति सा भुवने हरिणप्लुता।।" (वृत्तमुक्तावल्याम् ३/१८८)

अन्वय– (हे) कमलेक्षणे ! सुन्दरि ! यदि द्रुतविलम्बितकस्य आद्यतृतीययोः पादयोः प्रथमाक्षरं चेन्न (भवति) तदा च सा हरिणीप्लुता भवति।

स्मृतिव्याख्या–यदि द्रुतविलम्बित छन्द के प्रथम तथा तृतीय चरण में प्रथम अक्षर न्यून हो तथा अन्य पादों में द्रुतविलम्बित छन्द के ही पाद रखे गये हों तो इसे हरिणीप्लुता छन्द कहते हैं। यह अर्द्धसमवृत्त है क्यों कि इसके प्रथम और तृतीय पाद में ११-११ अक्षर तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद में १२-१२ अक्षर होते हैं। अन्य छन्दःशास्त्रकारों ने इसे हरिणप्लुता छन्द के नाम से व्यवहृत किया है। पिङ्गलसूत्र में इसका लक्षण दिया गया है कि जिसके प्रथम तृतीय चरण में तीन सगण, लघु गुरु हो तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद में नगण, भगण, भगण तथा रगण हो तो उसे हरिणप्लुता छन्द कहते हैं– "हरिणप्लुता सौ स् लौग् न् भौ भ्रौ।" (पि०सू० ५/४०)। वृत्तरत्नाकर का लक्षण भी इसी प्रकार है– "सयुगात्सलघू विषमे गुरुर्युजि नभौ भरकौ हरिणप्लुता।" (वृत्तरत्नाकर ४/८) छन्दोमञ्जरी (२/१८१) में इसका लक्षण भिन्न है– "मात्सौ जौ भरसंयुतौ करिबाण खैर्हरिणप्लुता।" अर्थात् भगण, सगण, दो जगण, भगण तथा रगण से युक्त हरिणप्लुता छन्द होता है जिसमें ८, ५ तथा ५ अक्षरों पर यति होती है। वृत्तमुक्ता वली में इसका लक्षण श्रुतबोध के अनुसार ही है–"पठितं रहितप्रथमाक्षरं द्रुतविलम्बितमाद्यतृतीययोः। गदिता कविभिर्मतिशालिभिर्भवति सा भुवने हरिणप्लुता।" (वृत्तमुक्तावली ३/१८८)

उदाहरण[१]– स० स० स० ल०गु०
प्रथमाक्षरमाद्यतृतीययोर — प्रथमपाद।
१२ ३ ४५६७८९१०११
न० भ० भ० र०
द्रुतविलम्बितकस्य च पादयोः। — द्वितीयपाद।
१२३४५६७८९१०,११,१२

---

१. द्वितीयोदाहरण– स्फुटफेनचया हरिणप्लुता वलिमनोज्ञतटा तरणेः सुता।
कलहंसकुलारवशालिनी विहरतो हरति स्म हरेर्मनः।।

हरिणीप्लुता के प्रथम पाद के समान ही तृतीय पाद तथा द्वितीय पाद के समान ही चतुर्थ पाद भी रखा जाता है।

अथ वंशस्थमाह

उपेन्द्रवज्राचरणेषु सन्ति चेदुपान्त्यवर्णा लघवःकृता यदा ।
मदोल्लसद्भ्रूजितकामकार्मुके[1] ! वदन्ति वंशस्थमिदं बुधास्तदा ॥३३॥

श्रुतिः– 'उपेन्द्रवज्राचरणेष्विति वंशस्थं लक्ष्यते। मदोल्लसद्भ्रूजितकामकार्मुके ! मदेनोल्लसन्त्यौ भ्रुवौ ताभ्यां जितं कामकार्मुकं पञ्चशरधनुर्यया सा तत्सम्बुद्धौ। यदा चेद् यदि उपेन्द्रवज्राचरणेषु उपेन्द्रवज्रावृत्तपादेषु उपान्त्यवर्णा अन्त्यसमीपस्थिता वर्णा एकादशवर्ण लघवो ह्रस्वाः कृता विहिताः सन्ति तदा बुधाश्छन्दोमर्मज्ञा इदं वंशस्थमेतन्नामधेयं वृत्तं वदन्ति कथयन्ति पिङ्गलसूत्रे (६/३४) वृत्तमिदं वंशस्था नामधेयेन प्रोक्तं तद् यथा– **"वंशस्था जतौ ज् रौ।"** वृत्तरत्नाकरे (३/४६)– 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" इति निगदितम्। छन्दोमञ्जर्या (२/६६) मस्य नाम 'वंशस्थविल' मिति कथितम्। तदुक्तं तत्र– **"वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ।"** सुवृत्ततिलकेऽप्युक्तं क्षेमेन्द्रेण- **"संलक्षितं जतजरैर्द्वादशाक्षरमक्षरैः। छन्दो विचक्षणा वृत्तं वंशस्थाख्यं प्रचक्षते ।"** (सुवृत्ततिलके १/२६) श्रुतबोधशैलीं गृहीत्वैव वृत्तमुक्तावल्या (३/१५०) मपि वंशस्थवृत्तलक्षणं भणितम्– **"उपेन्द्रवज्राचरणेषु चेद् भवन्त्युपान्त्यवर्णाः लघवः सुखप्रदाः। दिनेशसङ्ख्याक्षरशालि- वृत्तकं वदन्ति वंशस्थमिति प्रसिद्धमत्।"** एवं सर्वत्र वंशस्थलक्षणं न किञ्चिद् भिन्नं प्रवर्तते।

अन्वय– (हे) मदोल्लसद्भ्रूजितकामकार्मुके ! चेद् उपेन्द्रवज्राचरणेषु उपान्त्यवर्णा यदा लघवः कृताः सन्ति तदा बुधाः इदं वंशस्थं वदन्ति।

स्मृतिव्याख्या– उपेन्द्रवज्रा छन्द के सभी चरणों में यदि ग्यारहवाँ वर्ण लघु कर दिया जाय तो पण्डितजन उसे वंशस्थ छन्द कहते हैं। पिङ्गल सूत्र (६/३४) में इसे वंशस्था' कहा गया है तथा लक्षण देते हुए आचार्य ने लिखा है कि यदि जगण, तगण, जगण तथा रगण ये प्रत्येक चरण में क्रमशः हो तो उसे 'वंशस्था' (वंशस्थ) छन्द कहेगें– **"वंशस्था जतौ जरौ।"** 'वृत्तरत्नाकर' में भी लक्षण इसी प्रकार दिया गया है– **"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ**

---

१. 'सदानतिभ्राजितभारतीरते'– इति पाठभेदः ।

'वृत्तेषुविज्ञा विदिता जगत्त्रये'– इति पाठान्तरम् ।

(वृत्तरत्नाकर ३/४६)।" 'छन्दोमञ्जरी' (२/६६) में इसे 'वंशस्थावल' नाम से अभिहित किया गया है– "वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ।" 'सुवृत्ततिलक' (१/२६) में क्षेमेन्द्र ने भी यही लक्षण लिखा है– संलक्षितं जतजरैर्द्वादशाक्षरमक्षरैः। छन्दोविचक्षणा वृत्तं वंशस्थाख्यं प्रचक्षते।" वृत्तमुक्तावली में श्रुतबोध के अनुसार ही वंशस्थ का लक्षण उक्त है–उपेन्द्रवज्राचरणेषु चेद् भवन्त्युपान्त्यवर्णा लघवः सुखप्रदाः। दिनेशसङ्ख्याक्षरशालि-वृत्तकं वदन्ति वंशस्थमिति प्रसिद्धमत्।" (वृत्तमुक्तावली ३/१५०)। इस प्रकार सर्वत्र वंशस्थ वृत्त का लक्षण एकसमान ही है, नाम कहीं 'वंशस्थ,' कहीं वंशस्था' तथा 'कहीं वंशस्थविल' कहा गया है लक्षण में भिन्नता नहीं है।

उदाहरण[1]–

ज० त० ज० र०
उपेन्द्रवज्राचरणेषु सन्ति चे — प्रथमपाद
१२३४ ५६७८९ १० ११ १२

ज० त० ज० र०
दुपान्त्यवर्णा लघवः कृता यदा — द्वितीयपाद
१२ ३४५ ६७८ ९१० ११ १२

इसी प्रकार शेष चरणों में भी लघु गुरु की व्यवस्था समझनी चाहिए।

अथेन्द्रवंशामाह

यस्यामशोकाङ्कुरपाणिपल्लवे[2] वंशस्थपादा गुरुपूर्ववर्णकाः ।
तारुण्यहेलारतिरङ्गलालसे तामिन्द्रवंशां कवयः प्रचक्षते ॥३४॥

श्रुतिः– 'यस्यामि'ति लक्षयतीन्द्रवंशाम् । हे अशोकाङ्कुरपाणिपल्लवे ! अशोकाङ्कुरसदृश-पाणिपल्लवो यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ। तारुण्यहेलारतिरङ्गलालसे ! तारुण्यस्य नवयौवनस्य हेलास्ताभी रतिरङ्ग प्रीतिरागे लालसाऽभिलाषो यस्या सा तत्सम्बुद्धौ ! यस्यां वृत्तजातौ वंशस्थपादा वंशस्थच्छन्दसश्चरणाः गुरुवर्णपूर्वका पूर्वे वर्णाः गुरवो दीर्घा भवन्ति। कवयः कोविदास्तां वृत्तजातिमिन्द्रवंशामेतन्नामकीं प्रचक्षते ब्रुवते। पिङ्गल-सूत्रेऽस्य लक्षणं कथितम्– "इन्द्रवंशा तौ ज् रौ।" वृत्तरत्नाकरे (३/४६) "स्यादिन्द्रवंशा ततजै रसंयुतैः।"

---

१. द्वितीयोदाहरण– 'जनस्य तीव्रातपजार्तिवारणा जयन्ति सन्तः सततं समुन्नताः।
सितातपत्रप्रतिमा विभान्ति ये विशालवंशस्थतया गुणोचिताः ।।'

२. 'छन्दोविदामुक्तिकृतात्मसङ्गते'– इति पाठान्तरम् ।

३. 'विद्याविलासप्रिय ! यत्र नूनं'– पाठान्तरम् ।

गङ्गादासेन श्रुतबोधानुरूपमेवाऽस्य लक्षणं व्यलेखि– "तच्चेन्द्रवंशा प्रथमाक्षरे गुरौ (छन्दोमञ्जर्याम् २/६७)। नाऽस्य लक्षणं सुवृत्तलिके निगदितम्। वृत्तमुक्तावल्या (३/१५२) मप्यस्य लक्षणं लिखितं श्रीकृष्णभट्टेन– "वंशस्थवृत्ते यदि पूर्ववर्णका राजन्ति वक्रा सुखसारहेतवः।" एवं सर्वत्राऽस्य लक्षणं प्रायः श्रुतबोधकारानुसारमेव भणितम् ।

अन्वय– (हे) अशोकाङ्कुरपाणिपल्लवे ! तारुण्यहेलारतिरङ्गलालसे ! यस्यां वंशस्थपादा गुरुवर्णपूर्वकाः (भवन्ति), कवयः ताम् इन्द्रवंशां प्रचक्षते !

स्मृतिव्याख्या– यदि वंशस्थ वृत्त के सभी चरणों में प्रथम अक्षर गुरु हो तो कविजन उसे इन्द्रवंशा छन्द कहते हैं। पिङ्गलसूत्र में कहा गया है कि दो तगण, जगण और रगण यदि छन्द के प्रत्येक पाद में हो तो उसे इन्द्रवंशा छन्द कहेंगे– "इन्द्रवंशा तौ ज् रौ।" अन्य ग्रन्थों में इसके लक्षण अधोलिखित प्रकारेण दिये गये हैं–

१. स्यादिन्द्रवंशा ततजै रसंयुतैः (वृत्तरत्नाकर–३/४७)

२. तच्चेन्द्रवंशा प्रथमाक्षरे गुरौ (छन्दोमञ्जरी–२/६७)

३. वंशस्थवृत्ते यदि पूर्ववर्णका राजन्ति वक्रा सुखसारहेतवः।

(वृत्तमुक्तावली ३/१५२)

उदाहरण[1]–

त० त० ज० र०

यस्यामशोकाङ्कुरपाणिपल्लवे —— प्रथमपाद।

१ २३ ४ ५६७८ ९१०१११२

त० त० ज० र०

वंशस्थपादा गुरुवर्णपू र्वकाः । —— द्वितीयपाद।

१२ ३४ ५ ६७८९१०१११२

तृतीय तथा चतुर्थ चरण में भी इसी प्रकार गुरु लघु का क्रम रखना चाहिए।

अथ प्रभावतीमाह

यस्यां प्रिये[2] प्रथमकमक्षरद्वयं तुर्यं तथा गुरु नवमं दशान्तिकम् ।
सान्त्यं भवेद् यदि विरतिर्युगग्रहैः सा लक्षिता ह्यमृतलते प्रभावती ॥३५॥

---

१. द्वितीयोदाहरण– कुर्वीत यो देवगुरुद्विजन्मनामुर्वीपतिः पालनमर्थलिप्सया ।
तस्येन्द्रवंशेऽपि गृहीतजन्मनः सञ्जायते श्रीः प्रतिकूलवर्त्तिनी ॥

२. 'प्रिय'– इति पाठभेदः।

३. 'विपुलमते'– इति पाठान्तरम् ।

श्रुतिः— 'यस्यामि'ति प्रभावती लक्ष्यते। हे प्रिये ! अमृतलते ! पीयूषवल्लरि ! यस्यां वृत्तजातौ प्रथमकमक्षरद्वयं प्रथमं द्वितीयं चाऽक्षरं तुर्यं चतुर्थं नवमं नवमाक्षरं दशान्तिकमेकादशं सान्त्यमन्त्यवर्णसहितं त्रयोदशाक्षरं यदि गुरु भवेद् युगग्रहैश्चतुभिर्नव-भिश्चेति वर्णैर्विरतिर्यतिः स्यात् सा प्रभावती तन्नाम्नी वृत्तिर्लक्षिता निगदिता कविभिरिति। एतद्वृत्तं त्रयोदशाक्षरात्मकचरणं जायते। अप्रसिद्धत्वादस्य छन्दसो लक्षणं न वृत्तरत्नाकरादिषु दृश्यते। किन्तु वृत्तमुक्तावल्यामस्य लक्षणमेवमभाणि श्रीकृष्णभट्टेन—

"तान्तेगुरुर्नजरगणा यदि क्रमाद्दत्ता भवन्त्यनुपमरीतिशालिनः।
मोदावहा भवति यतिर्युगग्रहैः सा जीयते गरिमवती प्रभावती ॥"

(वृत्तमुक्तावली ३/१९०)

अन्वय— (हे) प्रिये ! अमृतलते ! यस्यां प्रथमकमक्षरद्वयं तथा तुर्यं नवमं सान्त्यं दशान्तिकं (च) गुरु भवेत् यदि युगग्रहैः विरतिः (स्यात्) सा हि प्रभावती लक्षिता।

स्मृतिव्याख्या— जिस छन्द के प्रत्येक चरण में त्रयोदश अक्षर हों तथा उनमें प्रथम दो अक्षर, चतुर्थ, नवम, एकादश तथा त्रयोदशवर्ण गुरु हों। इसके अतिरिक्त चार और नव अक्षर पर यति हो तो उसे प्रभावती वृत्त कहते हैं। इस छन्द के अत्यन्त, अप्रसिद्ध होने के कारण वृत्तरत्नाकर सुवृत्ततिलक आदि ग्रन्थो में इसके लक्षण उद्धृत नहीं हैं। 'वृत्तमुक्तावली' में कहा गया है कि यदि तगण, गुरु, नगण, जगण रगण क्रम से हों और चार तथा नव अक्षरों पर विराम हो तो उसे प्रभावती छन्द कहेंगे—

"तान्ते गुरुर्नजरगणा यदि क्रमाद्दत्ता भवन्त्यनुपमरीतिशालिनः ।
मोदावहा भवति यतिर्युगग्रहैः सा जीयते गरिमवती प्रभावती ॥

उपर्युक्त लक्षण को इस प्रकार भी निबद्ध किया जा सकता है जिसमें गुरु अन्त में पड़े— तगण, भगण, सगण, जगण तथा गुरु क्रम से हों तो भी प्रभावती छन्द कहा जा सकता है।

उदाहरण[१]—

तo भo सo जo गुo
यस्यां प्रियें प्रथमंकमंक्षं रं द्वं यम् — प्रथमपाद ।
१ २ ३४ ५६७८९१०१११२१३
तo भo सo जo गुo
तुर्यं तथां गुरुं नवमं दंशान्तिं कम् — द्वितीयपाद।
१२ ३ ४ ५६ ७८९ १०११ १२१३

शेष चरणों में भी लघु-गुरु का यही क्रम रहेगा।

अथ प्रहर्षिणीमाह

आद्यं चेत्त्रितयमथाष्टमं नवान्त्यं द्वे चान्त्ये गुरु विरतौ सुभाषिते[२]! स्यात्। विश्रामो भवति महेशनेत्रदिग्भिर्विज्ञेया ननु सुदति प्रहर्षिणी सा ॥३६॥

श्रुतिः— 'आद्य' मिति प्रहर्षिणीवृत्तं लक्ष्यते। हे सुभाषिते ! सुष्ठुभाषिते ! सुदति ! सुरदने! आद्यं प्रथमं त्रितयं वर्णत्रिकमथाष्टममनन्तरमष्टमं नवान्त्यं दशमम् उपान्त्यं द्वादशं विरतौ त्रयोदशाक्षरं च गुरु दीर्घं स्यात् । महेशनेत्रदिग्भि स्त्रिभि र्दशभिरक्षरैश्च विश्रामो यतिर्भवति, ननु सा प्रहर्षिणी विज्ञेया। पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे अस्य लक्षणं निगदिम्— "प्रहर्षिणी म्नौ जरौग् त्रिकदशकौ।" वृत्तरत्नाकरे (३/७०) त्वस्य लक्षणं प्राह केदारभट्टः— "म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्।" छन्दोमञ्जर्या (२/९५) मुक्तमस्य लक्षणम्— "त्र्याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम्।" सुवृत्ततिलकेऽप्युक्तं प्रहर्षिणीवृत्तलक्षणं तद् यथा— "समन्वितं मनजरैश्छिन्नं पूर्वाक्षरैस्त्रिभिः। त्रयोदशाक्षरं नाम्ना कीर्तयन्ति प्रहर्षिणीम्।" (सुवृत्ततिलके १/२८)। वृत्तमुक्तावल्यामप्युक्तम्— लक्ष्मैतन्मनजरगाःक्रमेण कार्या विश्राममस्त्रिभिरथ दिग्भिरत्र धार्यः। भोगीन्द्रस्फुटमुखचन्द्रमा सुधेयं विख्याता कविषु भवेत्प्रहर्षिणीति। (वृत्तमुक्तावली ३/१८६)

---

१. 'कूजत्पिकीकलकलकाकलीकले
कुञ्जालये पुलकविसंष्ठुलाकृतिः ।
कृष्णोऽधुना तव मुखचन्द्रचन्द्रिका—
तृष्णोच्चलन्नयनचकोरकः स्थितः ॥'

२. 'सदुक्तिमन्'— इति पाठभेदः। 'तथैव भूयात्'— इति पाठान्तरम्

३. 'सुमते'— इति पाठान्तरम्। सुकविमता'— इति पाठान्तरम् ।

अन्वय– (हे) सुभाषिते ! सुदति ! आद्यं चेत् त्रित्रयमथाष्टमं नवान्त्यमुपान्त्यं विरतौ च (अक्षरं) गुरु स्यात् । महेशनेत्रदिग्भिविश्रामः भवति ननु सा प्रेहर्षिणी विज्ञेया।

स्मृतिव्याख्या– जिस छन्द के त्रयोदशाक्षरात्मक प्रत्येक पाद में प्रथम तीन अक्षर अष्टम, दशम, द्वादश त्रयोदश अक्षर दीर्घ हों और तीन तथा दश अक्षरों पर यति हो तो उसे प्रहर्षिणी छन्द कहते हैं। पिङ्गलसूत्र में कहा गया है कि यदि मगण, नगण, जगण तथा रगण और गुरु हों तो उसे प्रहर्षिणी छन्द कहेगें– "प्रहर्षिणी म्नौ ज्रौ ग् त्रिकदशकौ।" इसमें तीन तथा दश अक्षरों पर विराम होता है। अन्य ग्रन्थों में भी प्रहर्षिणी छन्द का लक्षण दिया गया है, जिनके लक्षण अधोलिखित हैं–

१. "म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्" (वृत्तरत्नाकर ३/७०)

२. "त्र्याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम्" (छन्दोमञ्जरी २/९५)

३. "समन्वितं मनजरैश्छिन्नं पूर्वाक्षरैस्त्रिभिः ।
त्रयोदशाक्षरं नाम्ना कीर्त्तयन्ति प्रहर्षिणीम् ।" (सुवृत्ततिलक १/२८)

४. लक्ष्मैतन्मनजरगाः क्रमेण कार्या विश्रामस्त्रिभिरथ दिग्भिरत्र धार्यः ।
भोगीन्द्रस्फुटमुखचन्द्रमा सुधेयं विख्याता कविषु भवेत्प्रहर्षिणीति ।"
(वृत्तमुक्तावली ३/१८६)

उदाहरण[१]–

म० न० ज० र० गु०
आद्यं चेत् त्रितयमथाष्टमं नवान्त्यं —— प्रथमपाद।
१२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३

म० न० ज० र० गु०
द्वे चान्त्ये गुरु विरतौ सुभाषिते स्यात् । —— द्वितीयपाद।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३

इसीप्रकार अन्य चरणों में लघु-गुरु का क्रम समझना चाहिए।

अथ वसन्ततिलकामाह

आद्यं द्वितीयमपि चेद् गुरु तच्चतुर्थम् ।
यत्राष्टमं च दशमान्त्यमुपान्त्यमन्त्यम् ॥

---

१. द्वितीयोदाहरण– श्रीनाथे सुरवरपूजिताङ्घ्रिपद्मे कामारेः प्रियतम आर्त्तलोकबन्धौ ।
सर्वस्वे विषयवितृष्णमानसानां संसारे मतिरभवत् प्रहर्षिणीह ॥

कामाङ्कुशा[1]ङ्कुशितकामिमतङ्गजेन्द्रे
कान्ते वसन्ततिलकां किल तां वद[2]न्ति ॥३७॥

श्रुतिः– 'आद्यमिति वसन्ततिलका लक्ष्यते । हे कामाङ्कुशाङ्कुशितकामिमतङ्गजेन्द्रे ! कामो मदन एवाङ्कुशस्तेनाऽङ्कुशिता स्वायत्तीकृताः वशीकृता वा कामिन एव मतङ्गजेन्द्रा मदमत्तहस्तिनो यया सा तत्सम्बुद्धौ ! कान्ते ! प्रिये ! यत्र यस्मिन् वृत्ते चेद् यदि आद्यं प्रथमं द्वितीयं, चतुर्थमष्टमं दशमान्त्यमेकादशमुपान्त्यं त्रयोदशमन्त्यं चतुर्दशं च गुरु स्यात । तदा किल निश्चयेन तां वृत्तजातिं वसन्ततिलकां तन्नाम्नीं वदन्ति कथय[illegible]वयः। लक्षणमेतस्य वृत्तस्य पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे (७/८) निगदितम्– "वसन्ततिलका त्[illegible]ौ जौ गौ।" तत्रैव सूत्रद्वयेऽस्यापरनामद्वयं लिखितम् तद् यथा– "सिंहोन्नता काश्यपस्य।" "उद्धर्षिणी सैतवस्य" (७/९-१०) वृत्तरत्नाकरेऽप्युक्तं लक्षणमेतन्नामानि च–

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।
सिंहोद्धतेयमुदिता मुनिकाश्यपेन ॥
उद्धर्षिणीति गदिता मुनिशैतवेन ।
श्रीपिङ्गलेन कथिता मधुमाधवीति ॥"

(वृत्तरत्नाकरे ३/७९-८२)

छन्दोमञ्जर्यामुक्तम्– "ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः।" (छन्दोमञ्जर्यां २/११२) क्षेमेन्द्रो ब्रूतेऽत्र–"अभिज्ञातं तभजजैरन्तासक्तगुरुद्वयम्। चतुर्दशाक्षरं वृत्तं वसन्ततिलकं विदुः ।" (सुवृत्ततिलके १/२१)

वृत्तमुक्तावल्या (३/१९३) मप्युक्तम्–"वक्रद्वयं जगगतः सगणद्वयं स्यादन्ते तथैव यगणः सततं नियोज्यः। फुल्लद्वसन्ततिलकाञ्चितसौरभाढ्यं छन्दो वसन्ततिलका-- भिधर्मेतदुच्चैः।"

अन्वय– हे कामाङ्कुशाङ्कुशितकामिमतङ्गजेन्द्रे ! कान्ते ! यत्राद्यं द्वितीयमपि तच्चतुर्थमष्टमं दशमान्त्यमुपान्त्यमन्त्यञ्च चेद् गुरु (स्यात् तर्हि) तां किल वसन्ततिलकां वदन्ति।

स्मृतिव्याख्या– जिस छन्द में चतुर्दशाक्षरात्मक पाद में प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, अष्टम,

---

१. 'अष्टाभिरुज्ज्वलमते विरतिश्च षड्भिः'– इति पाठभेदः ।
'स्यादक्षरन्तु गुरुतासहितं तदानीं'– पाठान्तरम् ।

२. 'विज्ञा'– इति पाठान्तरम् । 'नाम्ना'– इति पाठभेदः ।

एकादश, त्रयोदश तथा चतुर्दश वर्ण गुरु हों, तो उसे वसन्ततिलका वृत्त कहते हैं, पिङ्गल सूत्र में कहा गया है कि तगण, भगण, जगण, जगण तथा दो गुरु यदि क्रम से हों तो उसे वसन्ततिलका छन्द कहते हैं। इसी छन्द को काश्यप आचार्य ने सिंहोन्नता और सैतव आचार्य ने उद्धर्षिणी कहा है– "वसन्ततिलका त्भौ जौ गौ। सिंहोन्नता काश्यपस्य। उद्धर्षिणी सैतवस्य।" (पिङ्गलसूत्र ७/८-१०) वृत्तरत्नाकर (३/७९-८२) में भी वसन्ततिलका छन्द का लक्षण दिया गया है जिसमें मुनि काश्यप के मत से इसका नाम 'सिंहोद्धता' तथा पिङ्गल के मत से 'मधुमाधवी कहा गया है–

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।
सिंहोद्धतेयमुदिता मुनिकाश्यपेन ॥
उद्धर्षिणीति गदिता मुनिशैतवेन ।
श्रीपिङ्गलेन कथिता मधुमाधवीति ॥

छन्दोमञ्जरी (२/११२) में भी वृत्तरत्नाकर के समान ही वसन्ततिलका छन्द का लक्षण उक्त है– "ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः।" यहाँ इसका नाम 'वसन्ततिलक' है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने वसन्ततिलका छन्द का लक्षण सुवृत्ततिलक (१/२९) में दिया है और इसका नाम 'वसन्ततिलक' रखा है–

"अभिज्ञातं तभजजैरन्तासक्तगुरुद्वयम् ।
चतुर्दशाक्षरं वृत्तं वसन्ततिलकं विदुः ॥"

वृत्तमुक्तावली में इसी लक्षण को भिन्न क्रम से इस प्रकार कहा गया है– दो गुरु, जगण, दो सगण, और यगण यदि क्रम से हों तो इसे वसन्ततिलका वृत्त कहते हैं–

"वक्रद्वयं जगणतः सगणद्वयं स्यादन्ते तथैव यगणः सततं नियोज्यः ।
फुल्लद्वसन्ततिलकाञ्चित सौरभाढ्यं छन्दो वसन्ततिलकाभिधमे तदुच्चैः ॥

(वृत्तमुक्तावली ३/१९३)

इस प्रकार लक्षण भिन्न क्रम से होने पर भी पिङ्गल सूत्र, वृत्तरत्नाकर आदि ग्रन्थों से अभिन्न ही है केवल क्रम का अन्तर है।

उदाहरण[१]—

त० भ० ज० ज० गु० गु०
आद्यं द्वितीयमपि चेद् गुरुं तच्चतुर्थम् — प्रथमपाद।
१२ ३ ४५६ ७ ८ ९१० ११ १२ १३ १४

त० भ० ज० ज० गु० गु०
यत्राष्टमं च दशमान्त्यमुपान्त्यमन्त्यम् — द्वितीयपाद।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४

अन्य चरणों में भी लघु-गुरु का क्रम इसी प्रकार रहेगा।

अथ मालिनीमाह

प्रथममगुरुषट्कं विद्यते यत्र कान्ते[२]
तदनु च दशमं चेदक्षरं द्वादशान्त्यम्[४] ।
करिभिरथ[३] तुरङ्गैर्यत्र कान्ते विरामः
सुकविजनमनोज्ञा मालिनी सा प्रसिद्धा ॥३८॥

श्रुतिः— 'प्रथममगुरुषट्क' मिति मालिनीं लक्षयति। हे कान्ते! प्रिये! यत्र यस्मिन् वृत्ते प्रथमं षट्कं प्रथमाक्षरात्षडक्षरं यावदगुरु लघु भवति। तदनु दशमं द्वादशान्त्यं त्रयोदशं लघु। पञ्चदशाक्षरात्मकेषु चरणेषु शेषवर्णा दीर्घाः स्युश्चेत् करिभिरथ तुरङ्गैरष्टभिः सप्तभिश्च विरामो यतिस्तदा सुकविजनमनोज्ञा सुकविप्रिया सा मालिनी नामवृत्तजातिः प्रसिद्धा। एतद्वृत्तं कविषु प्रथितमित्यर्थः। पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे (७/१४)— "मालिनी नौ म् यौ य्।" वृत्तरत्नाकरेऽप्युक्तम्— "ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।" (वृत्तरत्नाकरे ३/८७)। एवमेवच्छन्दोमञ्जर्या (२/१३४) मप्युक्तम्। क्षेमेन्द्रः कथयति— "अष्टाक्षरविरामेण युक्ता ननमयैः सयैः। वदन्ति मालिनी नाम वृत्तं पञ्चदशाक्षरम्।" (सुवृत्ततिलके १/३०) मालिनीच्छन्दसो

---

१. द्वितीयोदाहरण— तद्भाजि जन्मसचिवे भगवत्यनङ्गे
प्राप्ते लसत्कुसुममण्डलपाण्डुरेण ॥
भृङ्गावलीकुटिलकुन्तलसन्निवेशा
कान्ता वसन्ततिलकेन विभूषिता भूः ॥

२. 'वृत्ते'— इति पाठभेदः ।

३. 'गिरिभिरथ'— इति पाठान्तरम् ।

४. 'नूनम्'— इति पाठान्तरम् । 'भूयात्'— इति पाठान्तरम् ।

लक्षणं निगदितम् वृत्तमुक्तावल्याम् (३/२०८)– "नगणयुगलमादौ वक्रयुग्मं रयुग्मं तदनु कलय वक्रं तोषयन्भूमिशक्रम्।। प्रतिचरणनियम्यं वृत्तमेतत्सुरम्यं गुणिगणमुखगेयं मालिनीनामधेयम् ।।

अन्वय– (हे) कान्ते ! यत्र प्रथमं षट्कं तदनु दशमं द्वादशान्त्यं चेत् चाक्षरमगुरु विद्यते। (हे) कान्ते ! यत्र करिभिरथ तुरङ्गै र्विरामः (स्यात्तर्हि) सा सुकविजनमनोज्ञा मालिनी प्रसिद्धा (वर्तते)।

स्मृतिव्याख्या– जिस छन्द में प्रत्येक चरण में पन्द्रह वर्ण हों और प्रथम से छः अक्षर पर्यन्त, दशम और त्रयोदश अक्षर लघु हों। आठ तथा सात अक्षरों पर विराम हो तो उसे सुकविजनों का प्रिय मालिनी छन्द कहते हैं। पिङ्गलसूत्र (७/१४) में मालिनी वृत्त का लक्षण लिखते हुए कहा गया है कि नगण, नगण, मगण, यगण तथा यगण ये क्रम से हों तो उसे मालिनी वृत्त कहते हैं– "मालिनी नौ म्यौ य्।" वृत्तरत्नाकर (३/८७) तथा छन्दोमञ्जरी (२/१३४) में भी मालिनी छन्द का लक्षण दिया गया है– "ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।" सुवृत्ततिलक में आचार्य क्षेमेन्द्र भी मालिनी छन्द का लक्षण लिखते हैं– "अष्टाक्षरविरामेण युक्ता ननमयैः सयैः। वदन्ति मालिनी नाम वृत्तं पञ्चदशाक्षरम्।" (सुवृत्ततिलक १/३०) वृत्तमुक्तावली में भी मालिनी का लक्षण भिन्न प्रकारेण उद्धृत किया गया है किन्तु उसका आशय यही है जो वृत्तरत्नाकरादि ग्रन्थों में कहा गया है–

नगणयुगलमादौ वक्रयुग्मं रयुग्मं
तदनु कलय वक्रं तोषयन्भूमिशक्रम् ॥
प्रतिचरणनियम्यं वृत्तमेतत्सुरम्यं
गुणिगणमुखगेयं मालिनी नामधेयम् ॥
(वृत्तमुक्तावली ३/२०८)

उदाहरण[१]– न० न० म० य० य०
प्रथममगुरुषट्कं विद्यते यत्र कान्ते —— प्रथमपाद।
१२३४५६७८ ९१०११ १२१३ १४१५

१. द्वितीयोदाहरण– नन न नमयवाणी मेखलाकृष्टिकाले
प्रविचलदिव शीलं नोत्सृजन्ती दूकूलम् ।
तृणलवचलनेऽपि स्वैरिणी शङ्कमाना
दिशि दिशि कृतदृष्टिर्मालिनी कस्य नेष्टा ॥

न० न० म० य० य०
तदनु च दशमं चेदक्षरं द्वादशान्त्यम् —— द्वितीयपाद।
१२३ ४ ५६७ ८९१०११ १२१३१४ १५

मालिनी के शेष चरणों में इसी प्रकार गुरु-लघु की व्यवस्था करनी चाहिए।

अथ हरिणीमाह

सुमुखि[1] ! लघवः पञ्च प्राच्यास्ततो दशमान्तिक-
स्तदनु ललितालापे[2] वर्णौ यदि त्रिचतुर्दशौ ।
प्रभवति पुनर्यत्रोपान्त्यः स्फुरत्कर[3]कङ्कणे
यतिरपि रसैर्वेदैरश्वैः स्मृता हरिणीति सा ॥३९॥

श्रुतिः– 'सुमुखीति हरिणी लक्ष्यते। हे सुमुखि ! शुभानने ! स्फुरत्करकङ्कणे ! स्फुरन्ति करयोः कङ्कणानि यस्या सा तत्सम्बुद्धौ । यत्र यस्मिञ्छन्दसि प्राच्या प्रथमे पञ्च वर्णा लघवो ह्रस्वा भवन्ति । ततो दशमान्तिक एकादशस्तदनु तदनन्तरं त्रिचतुर्दशौ त्रयोदशचतुर्दशौ वर्णौ उपान्त्यः षोडशोऽपि वर्णो लघुः स्यात्। हे ललितालापे ! सुमधुरभाषिणि ! रसैः षड्भिर्वेदैश्चतुर्भिरश्वैश्च सप्तभिर्विरामः स्यात्तदा सा हरिणी स्मृता कथिता। अत्र पिङ्गलाचार्योऽपि ब्रूते– **"हरिणी त् सौ म्रौ स्लौ गृतुसमुद्रऋषयः।"** (पि०सू० ७/१६) वृत्तरत्नाकरे कथितम्– **"रसयुगहयैर्न् सौ म्ना स्लौ गो यदा हरिणी तदा।"** (वृत्तरत्नाकरे-३/९६) छन्दोमञ्जर्यां **'नर मरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।"** इति लक्षणं प्रोक्तम् (छन्दोमञ्जर्याम् २/१६७) क्षेमेन्द्रो ब्रवीति– "नसमै रसलैर्गेन युक्ता सप्तदशाक्षरा। विच्छिन्ना हरिणी षड्भिश्चतुर्भिः सप्तभिस्तथा।" (सुवृत्ततिलके १/३३)।

अन्वय– (हे) सुमुखि ! ललितालापे ! स्फुरत्करकङ्कणे ! यदि यत्र प्राच्याः पञ्च ततो दशमान्तिकस्तदनु त्रिचतुदशौ वर्णौ पुनरुपान्त्यो लघवः प्रभवति, रसैर्वेदैरश्वैर्यतिरपि (स्यात्) (तदा) सा हरिणीति स्मृता।

स्मृतिव्याख्या– जिसके चरण में सप्तदश वर्ण हों, उसमें प्रथम पाँच अक्षर लघु हों और

---

१. 'स्युरिह'– इति पाठभेदः। 'इह हि'– इति पाठान्तरम् ।
२. 'लघुतायुक्तौ'– इति पाठ भेदः।
३. अधिभारति सद्रते'– इतिपाठभेदः। 'ऽक्षरं लघुताऽङ्कितम्'– इति पाठभेदः ।

एकादश, त्रयोदश, चतुर्दश तथा षोड्श वर्ण भी ह्रस्व हों। छः, चार, तथा सात अक्षरों पर यति हो तो हरिणी नामक छन्द बनता है। पिङ्गलच्छन्दःसूत्रकार ने लिखा है कि यदि प्रत्येक चरण में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण तथा लघु-गुरु क्रम से हो और छः चार तथा सात अक्षरों पर विराम हो तो वह हरिणी छन्द है–

"हरिणी न्सौ म्रौ स्लौ गृतुसमुद्रऋषयः।" (पि०सू० ७/१६) अन्य गन्थों में हरिणी छन्द के लक्षण अधोलिखित हैं–

१. "रसयुगहयैर्न्सौ म्ना स्लौ गो यदा हरिणी तदा।" (वृत्तरत्नाकर ३/९६)

२. "नरमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।" (छन्दोमञ्जरी २/१६७)

३. नसमै रसलैर्गेन युक्ता सप्तदशाक्षरा।
विच्छिन्ना हरिणी षड्भिश्चतुर्भिःसप्तभिस्तथा॥"

(सुवृत्ततिलके १/३३)

उदाहरण[1]– न० स० म० र० स० ल०गु०
सुमुखि लघवः पञ्च प्राच्यास्ततो दश मान्ति कः —— प्रथमपाद।
१ २ ३ ४५६ ७८ ९ १० ११ १२ १३१४१५१६१७

न० स० म० र० स० ल०गु०
तदनु ललितालापे वर्णौ यदि त्रिचतुर्दशौ —— द्वितीयपाद।
१२३४५६७८९ १० ११ १२ १३ १४ १६ १७

लघु-गुरु की व्यवस्था अन्य चरणों में भी इसी प्रकार होगी।

अथ शिखरिणीमाह

यदा पूर्वो ह्रस्वः कमलनयने[2] षष्ठकपरा-
स्ततो वर्णाःपञ्च प्रकृतिसुकुमाराङ्गि[3], लघवः।

---

१. द्वितीयोदाहरण– न समरसनाः काले भोगाश्चलं धनयौवनं,
कुरुत! सुकृतं यावन्नेयं तनुः प्रविशार्यते।
किमपि कलना कालस्येयं प्रधावति सत्वरा,
तरुणहरिणी सन्त्रस्तेव प्लवप्रविसारिणी॥

२. 'भवति मतिमन्'– इतिपाठान्तरम् 'प्राच्योवर्णो भवति च लघुः'– इति पाठभेदः।

३. 'प्रकृतिसरल! स्युस्तु'– इति पाठान्तरम्। 'प्रकृतिसुभगा हन्त'– इति पाठभेदः

त्रयोऽन्ये चोपान्त्याः सुतनु[१] जघनाभोगसुभगे
रसै[२] रुद्रैर्यस्यां भवति विरतिः सा शिखरिणी ॥४०॥

श्रुतिः– 'यदेति शिखरिणी लक्ष्यते। हे कमलनयने ! पद्माक्षि ! प्रकृति-सुकुमाराङ्गि ! प्रकृत्या स्वभावेन सुकुमाराण्यङ्गानि यस्या सा तत्सम्बुद्धौ। सुतनु ! सुष्ठुकाये ! जघनाभोगसुभगे ! जघनयोराभोगस्तेन सुभगा तत्सम्बुद्धौ ! यदा यत्र पूर्वो वर्णः प्रथमो वर्णो ह्रस्वो लघुस्ततोऽनन्तरं षष्ठकपराः पञ्चवर्णा सप्तमाष्टमनवमदशमैकादशा वर्णा लघवो भवन्ति। ततश्चाऽन्ये उपान्त्यास्त्रयो वर्णाश्चतुर्दशपञ्चदशषोडशा लघवो भवन्ति। यस्याँ यस्मिन् वृत्ते रसैः षड्भी रुद्रैरेकादशैर्विरतिर्यतिर भवति स्यात् सा शिखरिणी नाम वृत्तं कथ्यते। तदुक्तं पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे (७/२०)– शिखरिणी य्मौ न् सौ भ्लौ गृतुरुद्राः ।" वृत्तरत्नाकरे (३/९३) छन्दोमञ्जर्यां (२/१६३) चोक्तमस्य लक्षणम्– "रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।" तथोक्तं सुवृत्ततिलके (१/३४)– यमनैः सभलैर्गेन युक्ता सप्तदशाक्षरा। षडेकादशविच्छेदवती शिखरिणी मता।" तल्लक्षणमुक्तं वृत्तमुक्तावल्याम् (३/२२७)–

"पुरः शुद्धं वक्रं कुरु गुरुलघूनां सुरुचिरम् ।
चतुष्कं प्रत्येकं यगणनगणावन्तगुरुकौ ।
क्रमादेवं न्यासाऽतिशयसविलासाक्षरपदा ॥
रसै रुद्रैःर्युक्ता रचितयतिरुक्ता शिखरिणी ॥"

अन्वय– (हे) कमलनयने! प्रकृतिसुकुमाराङ्गि! सुतनु! जघनाभोगसुभगे! यदा पूर्वो (वर्णो) ह्रस्वः ततः षष्ठकपराः पञ्च वर्णा लघवः (भवन्ति) अन्ये चोपान्त्यास्त्रयः (वर्णा लघवः स्युः)। यस्यां रसैः रुद्रैः विरति भवति सा शिखरिणी (स्यात्)।

स्मृतिव्याख्या– जिसके प्रत्येक चरण में सप्तदश अक्षर होते हैं तथा उनमें प्रथम, सप्तम अष्टम, नवम, दशम, एकादश, चतुर्दश, पञ्चदश तथा षोडश अक्षर ह्रस्व हों और छः तथा ग्यारह अक्षरों पर यति हो तो उसे शिखरिणी छन्द कहते हैं। पिङ्गल सूत्र में कहा गया है

---

१. 'सुकविजनतासौख्यकरणी'– इति पाठान्तरम् ।
"तदनुविलसन्त्येव लघवो'– इति पाठान्तरम् ।

२. 'रसैरीशैः'– इति पाठभेदः ।

कि यदि यगण, मगण, नगण, सगण, भगण लघु और गुरु क्रमशः हो तो उसे शिखरिणी छन्द कहेंगे–

१. "शिखरिणी य् मौ न् सौ भ्लौ गृतुरुद्राः।" (पि०सू० ७/२०)

इसमें छः तथा ग्यारह वर्णों पर यति होती है। वृत्तरत्नाकरादि ग्रन्थों के लक्षण भी यहाँ उद्धृत किये जाते हैं–

२. "रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।" – (वृत्तरत्नाकर ३/९३)
– (छन्दोमञ्जरी २/१६३)

३. "यमनैः सभलैर्गेन युक्ता सप्तदशाक्षरा ।
षडेकादशविच्छेदवती शिखरिणी मता ।।" –(सुवृत्ततिलक १/३४)

४. पुरः शुद्धं वक्रं कुरु गुरुलघूनां सुरुचिरम्
चतुष्कं प्रत्येकं यगणनगणावन्तगुरुकौ ।।
क्रमादेवं न्यासाऽतिशयसविलासाक्षरपदा
रसै रुद्रैर्युक्ता रचितयतिरुक्ता शिखरिणी (वृत्तमुक्तावली ३/२२७)

उदाहरण[1]– य० म० न० स० भ० ल०गु०
यदा पूर्वो ह्रस्वः कमलनयने षष्ठकपरा
य० म० न० स० भ० ल०गु०
स्ततो वर्णाः पञ्च प्रकृतिसुकुमाराङ्गि लघवः।

अन्य चरणों में भी लघु-गुरु का यही क्रम समझना चाहिए।

अथ पृथ्वीमाह

द्वितीयमलिकुन्तले[2] यदि षडष्टमं द्वादशं
चतुर्दशमथ प्रिये[3] गुरु गभीरनाभिह्रदे ।

---

१. द्वितीयोदाहरण– दुरालोकस्तोकस्तबकनवकाशोककलिका
विकासः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति ।
अपि भ्राम्यद् भृङ्गीरणितरमणीया न मुकुल-
प्रसूतिश्चूतानां सखि ! शिखरिणीयं सुखयति ।।

२. 'द्वितीयमयि श्रीमतांप्रिय'– इति पाठभेदः । द्वितीयमपि चाक्षरं'– इति पाठभेदः ।

३. 'चतुर्दशमथालघु प्रकृतिधीर ! विद्यार्थिनाम्'– इति पाठान्तरम् ।
'चतुर्दशमथो भवेत्कुरु तथैव तत्राक्षरम्'– इति पाठान्तरम् ।

सपञ्चदशमन्तिमं तदनु यत्र कान्ते[१] यतिः
करीन्द्रफणिभृत्कुलैर्भवति सुभ्रु पृथ्वी हि सा ॥४१॥

श्रुतिः– 'द्वितीयमलिकुन्तल' इति पृथ्वी लक्ष्यते। हे अलिकुन्तले! अलिवद् भ्रमरसदृशकृष्णा कुन्तलाऽलका यस्या सा तत्सम्बुद्धौ । गभीरनाभिह्रदे! गभीरा निम्ना नाभिरेव ह्रदो यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ ! हे प्रिये ! प्रेयसि ! यत्र यस्मिन् वृत्ते षडष्टमं षष्ठमष्टमं च द्वादशं चतुर्दश मथ सपञ्चदशमन्तिमं पञ्चदशाक्षरेण सहाऽन्तिमं सप्तदशाक्षरं गुरु यदि स्यात् । हे सुभ्रु ! सुष्ठुभ्रु! कान्ते! प्रियतमे! करीन्द्रैरष्टभिः फणिभृत्कुलैर्नवभिश्च यतिः स्यात् तर्हि सा पृथ्वी नाम वृत्तजातिर्भवति। तदुक्तं पिङ्गलसूत्रे (७/१०) "पृथ्वी ज् सौ ज् सौ य् लौ ग् वसुनवकौ।" वृत्तरत्नाकरे (३/९४) छन्दोमञ्जर्यां (२/१६४) चोक्तम्– "जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।सुवृत्ततिलकेऽप्युक्तम्–"जसजैःसयलैर्गेन युताष्टनवसंहृतिः। दश सप्ताक्षरा पृथ्वी कथिता वृत्तकोविदैः।" (सुवृत्ततिलके १/३२) अस्य लक्षणं वृत्तमुक्तावल्यामेवं निगदितम्– "जशुद्धजगुरुत्तरं नगणरद्वयं चेद् भवेत् तदा सफल-वाग्मिभिर्भृशमभाणि पृथ्वीति तत्॥ विभाति यतिरष्टभिर्नवभिरक्षरैर्मोददा, विमोहितसभासदा समुदयेल्लसद्वृत्तके।"– (वृत्तमुक्तावल्याम् ३/२२२)

अन्वय– (हे) अलिकुन्तले ! गभीरनाभिह्रदे ! प्रिये ! यत्र द्वितीयं षडष्टमं द्वादशं चतुर्दशमथ सपञ्चदशमन्तिमं गुरु (भवेत्) (हे) सुभ्रु ! कान्ते ! तदनु करीन्द्रफणिभृत्कुलैर्यतिर्भवति, सा हि पृथ्वी (स्यात्)।

स्मृतिव्याख्या– जिस छन्द के प्रत्येक चरण में सप्तदशाक्षर हों जिनमें द्वितीय, षष्ठ, अष्टम, द्वादश, चतुर्दश, पञ्चदश और सप्तदश अक्षर गुरु हों तथा आठ और नव अक्षरों पर यति हो तो उसे पृथ्वी छन्द कहते हैं। पिङ्गलसूत्र में लिखा है कि यदि जिसके प्रत्येक चरण में जगण, सगण, जगण, सगण, यगण, लघु और गुरु क्रम से हो तो उसे पृथ्वी छन्द कहते हैं– "पृथ्वी ज् सौ ज् सौ य्लौ ग् वसुनवकौ।" (पि०सू० ७/१७) यहाँ आठ तथा नव अक्षरों पर विरति भी होती है। अन्य ग्रन्थों में भी इसके लक्षण उक्त हैं–

१. "जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।" (वृत्तरत्नाकर ३/९४)
(छन्दोमञ्जरी २/१६४)

२. "जसजैः सयलैर्गेन युताष्टनवसंहृतिः ।
दशसप्ताक्षरा पृथ्वी कथिता वृत्तकोविदैः॥" (सुवृत्ततिलक १/३२)

---

१. 'नूनम्'– इति पाठभेदः। 'भूयात्'– इति पाठान्तरम् ।

२. 'तत्र'– इति पाठभेदः। 'निगदिता नु'– इति पाठान्तरम् ।

३. "जशुद्धजगुरुत्तरं नगणरद्वयं चेद्भवेत् ।
तदा सफलवाग्मिभिर्भृशमभाणि पृथ्वीति तत् ।
विभाति यतिरष्टभिनवभिरक्षरैर्मोददा ।
विमोहितसभासदा समुदयेल्लसद्वृत्तके ।।" (वृत्तमुक्तावली ३/२२२)

उदाहरण[१]— ज० स० ज० स० य० ल०गु०
द्विंतींयंमलिंकुंन्तलें यंदिं षं डंष्टं मं द्वां दं शं — प्रथमपाद।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७
ज० स० ज० स० य० ल०गु०
चंतुंर्दं शंमर्थं प्रिंयें गुंरुं गंभीरं नांभिं हं दें। — द्वितीयपाद।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७

अन्य पादों में लघु-गुरु की व्यवस्था इसीप्रकार रहेगी।

अथ शार्दूलविक्रीडितमाह

आद्याश्चेद् गुरवस्त्रयः प्रियतमे[२] षष्ठस्तथा चाष्टमो ।
नन्वेकादशतस्त्रयस्तदनु[३] चेदष्टादशाद्यौ ततः ॥
मार्तण्डैर्मुनिभिश्च[४] यत्र विरति पूर्णेन्दुबिम्बानने[५] ।
तद्वृत्तं प्रवदन्ति काव्यरसिका शार्दूलविक्रीडितम् ॥४२॥

श्रुतिः— 'आद्या' इति शार्दूलविक्रीडितं लक्षयति। हे प्रियतमे ! प्रिये ! पूर्णेन्दु-बिम्बानने ! पूर्णिमोदितचन्द्रबिम्बमुखि ! आद्याश्चेद् यदि प्रथमाः त्रयः त्रिसङ्ख्यका वर्णाः गुरवो दीर्घाः

---

१. द्वितीयोदाहरण— दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमत्यास्पदम् ।
गतिर्जनमनोरमा विजितरम्भमूरुद्वयम् ।
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवा-
वहो बिबुधयौवतं वहति तन्वि ! पृथ्वीगता।।

२. 'यदि ततः'— इति पाठान्तरम्। 'विरचिताः'— इति पाठ भेदः ।

३. 'स्यादेकादशतः--------- तन्वष्टादशाद्यान्तिमाः'— इति पाठभेदः।
'सन्त्येकादशतः ------- चेदष्टादशाद्यान्तिमाः'— इति पाठान्तरम् ।

४. 'वर्णाश्चेद् विरतिस्तथा हि मुनिभिः'— इति पाठान्तरम् ।

५. 'छन्दोऽनुसन्धानकृत्'— इति पाठान्तरम् ।
'सूर्यैश्च यत्रोदिता'— इति पाठभेदः ।

स्युस्तथा षष्ठोऽष्टमश्च वर्णो गुरुः स्यात् ननु निश्चयरूपेणैकादशतस्त्रयो द्वादश-त्रयोदशचतुर्दशा वर्णा गुरवः स्युस्तदनु तदनन्तरं चाऽष्टादशाद्यौ षोडशसप्तदशौ वर्णौ गुरू स्याताञ्चेदेकोनविंशोऽपि गुरुर्भवेत् । यत्र यस्मिंश्च वृत्ते मार्त्तण्डैर्द्वादशभिर्मुनिभिः सप्तभिश्चाऽक्षरैर्विरतिर्यतिर्भवेत् तर्हि काव्यरसिका काव्यसहृदयास्तद् वृत्तं शार्दूलविक्रीडितमिति नाम्ना प्रवदन्ति प्रब्रुवन्ति। अत्र पिङ्गलाचार्यो ब्रूते–"शार्दूलविक्रीडितं म्सौ ज्सौ तौ गादित्यऋषयः।" (पि०सू० ७/२२) वृत्तरत्नाकरे (३/१०१) छन्दोमञ्जर्यां (२/१९८) चोक्तमस्य लक्षणम्– "सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।" सुवृत्ततिलके(१/३६) ऽप्युक्तम्–"मसजैः सततै-र्गेन युक्तमेकोनविंशवत्।शार्दूलक्रीडितं प्राहुश्छिन्नं द्वादश सप्तभिः।" वृत्तमुक्तावल्या (३/२४३) मस्य लक्षणमुक्तम्–

"दत्त्वादौ मगणं ततः सजगणौ सान्ते ततस्तद्द्वयं ।
तस्यान्ते गुरुमेकमुच्चर सखे ! कृत्वा मतिं निश्चलाम् ॥
इत्युच्चैः प्रचरच्चतुश्चरणभाक् सम्भाव्यमानाक्षरम् ।
छन्दः सन्ततसुन्दरं विजयते शार्दूलविक्रीडितम् ॥"

अन्वय– (हे) प्रियतमे ! पूर्णेन्दुबिम्बानने ! यत्र चेद् आद्याः त्रयोगुरवः (स्युः) तथा षष्ठोऽष्टमश्च, ननु एकादशतस्त्रयस्तदनु चेद् अष्टादशाद्यौ ततः (एकोनविंशो गुरुः स्यात्)। मार्त्तण्डैर्मुनिभिश्च विरतिर्भवेत्। काव्यरसिकाः तद् वृत्तं शार्दूलविक्रीडितं प्रवदन्ति।

स्मृतिव्याख्या– जिस छन्द के प्रत्येक पाद में उन्नीसवर्ण हों, जिनमें प्रथम तीन अक्षर, षष्ठ, अष्टम, द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश, षोडश, सप्तदश और अन्तिम एकोनविंश (उन्नीसवां) अक्षर गुरु हों तथा बारह और सात अक्षरों पर यति हो, तो काव्यरसिक जन उसे शार्दूलविक्रीडित छन्द कहते हैं। आचार्य पिङ्गल ने लिखा है कि मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण तथा गुरु क्रम से हों तो उसे शार्दूल विक्राडित वृत्त कहते हैं। यहाँ बारह तथा सात अक्षरों पर विरति होनी चाहिए। अन्य ग्रन्थों में, शार्दूल विक्रीडित का यही लक्षण दिया गया है–

१. "सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।"
(वृत्तरत्नाकर ३/१०१, छन्दोमञ्जरी २/१९८)

२. "मसजैः सततैर्गेन युक्तमेकोनविंशवत् ।
शार्दूलविक्रीडितं प्राहुश्छिन्नं द्वादशसप्तभिः ॥" – (सुवृत्ततिलक १/३६)

३. दत्त्वादौ मगणं ततः सजगणौ सान्ते ततस्तद्द्वयं ।
तस्यान्ते गुरुमेकमुच्चर सखे ! कृत्वा मतिं निश्चलाम् ॥
इत्युच्चैः प्रचरच्चतुश्चरणभाक् सम्भाव्यमानाक्षरम् ।

छन्दः सन्ततसुन्दरं विजयते शार्दूलविक्रीडितम् ।। (वृत्तमुक्तावली ३/२४३)

उदाहरण[१]— म० स० ज० स० त० त० गु०

आँद्याँश्चेंद् गुंरंवंस्त्रंयः प्रिंयंतंमें. षंष्ठंस्तंथाँ चाँष्टंमाँ। — प्रथमपाद।

१ २ ३ ४५६७८ ९१०१११२ १३१४१५१६ १७१८१९

म० स० ज० स० त० त० गु०

नंन्वेंकांदंशंतंस्त्रंयंस्तं दंनु चेंदं ष्टों दं शाँ द्यौं तं तंः। —द्वितीयपाद।

१ २ ३४५६ ७८ ९ १०११ १२१३१४१५१६१७ १८१९

तृतीय तथा चतुर्थ चरण में भी लघु-गुरु का क्रम इसी प्रकार रहेगा ।

अथ स्रग्धरामाह

चत्वारो यत्र वर्णाः प्रथममलघवः षष्ठकः सप्तमोऽपि ।
द्वौ तद्वत्षोडशाद्यौ मृगमदमुदिते[२] षोडशान्त्यौ तथान्त्यौ ॥
रम्भास्तम्भोरुकान्ते[३] मुनिमुनिमुनिभिर्दृश्यते चेद् विरामो ।
बाले[४] वन्द्यैः कवीन्द्रैः सुतनु[५] निगदिता स्रग्धरा[६] सा प्रसिद्धा ॥४३॥

श्रुतिः— 'चत्वार' इति स्रग्धरा लक्ष्यते। हे मृगमदमुदिते ! कस्तूरिकामोदप्रसन्ने ! रम्भास्तम्भोरुकान्ते ! कदलीस्तम्भोरम्यजघने ! सुतनु ! सुशोभनाङ्गे ! बाले ! षोडशि ! यत्र यस्मिन् छन्दसि ! प्रथमं चत्वारो वर्णा अलघवो गुरवः स्युः षष्ठकः सप्तमोऽपि तद्वद् गुरु

---

१. द्वितीयोदाहरण— माद्यत्सङ्गसमाततोग्रसुभटोद्भिन्नेभ कुम्भस्थल-
श्लिष्यन्मौक्तिकदन्तुरः सरभसोद्वेल्लद्यशः केशरः।
जृम्भारम्भभयङ्करव्यतिकरत्रस्तैः समुद्वीक्षितः ।
शत्रूणां त्वदसिः करोति समरे शार्दूलविक्रीडितम् ॥

२. 'श्रुतिधरपथभृत्'— इति पाठान्तरम् । 'गुरुगतिकलितौ'— इति पाठभेदः ।

३. 'छन्दःशास्त्राभिलाषिन्'— इति पाठभेदः। वृत्ते यस्मिन् मनोज्ञे— इति पाठभेदः।

४. 'शिष्य ! स्तुत्यैः'— इति पाठभेदः। 'सेयम्'— इति पाठभेदः ।

५. 'सतत'— इति पाठभेदः सपदि'— इति पाठान्तरम् ।

६. 'स्रग्धरेति' इति पाठान्तरम् ।

षोडशाद्यौ चतुर्दशपञ्चदशौ षोडशान्त्यौ सप्तदशाष्टादशौ द्वौ वर्णों दीघौ स्याताम् । तथान्त्यौ विंशैकविशौ गुरू भवेताम्। मुनिमुनिमुनिभिः सप्तसप्तसप्तभिश्चेद् यदि विरामो यतिः स्यात् तदा सा वन्द्यैर्वन्दनीयैः श्रेष्ठैः कवीन्द्रैः कविवरैः प्रसिद्धा स्रग्धरा एतन्नामवृत्तजाति र्निगदिता भणिता वर्तते। पिङ्गलसूत्रे (७/२५) स्रग्धराच्छन्दसो लक्षणमुक्तम्– "स्रग्धरा म्रौ भ्नौ यौ य् त्रिसप्तकाः।" वृत्तरत्नाकरे (३/१०४) छन्दोमञ्जर्यां (२/२१२) चोक्तमस्य लक्षणम्– "म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनि यतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।" सुवृत्ततिलके (१/३७) कथितम्– "युक्तं मरभनैर्यैश्च त्रिभिः सप्ताक्षरैस्त्रिभिः। छेदैश्च स्रग्धरावृत्तमेकविंशाक्षरं विदुः।" वृत्तमुक्तावल्यां (३/२५६) स्रग्धरावृत्तस्य लक्षणमुक्तम्–

पूर्वे स्युर्वेदवक्रास्तदुपरि यगणः शुद्धषट्कं च बक्रो ।
रद्वन्द्वान्तेऽथ वक्रः पुनरपि चरणानीति चत्वारि यस्याम् ॥
मार्त्तण्डाश्वैर्मुनीन्द्रैः पुनरपि मुनिभिर्यत्र विश्रान्तिरुक्ता ।
छन्दःसन्दोहकल्पद्रुमकुसुमकृत स्रग्धरा स्रग्धरा सा ॥"

एवमत्र श्रुतबोधे सर्वाणि वृत्तानि सुष्ठुतया व्याख्यातानि। छात्राणां व्युत्पत्तयेऽत्र पिङ्गलवृत्तरत्नाकरच्छन्दोमञ्जरीसुवृत्ततिलकवृत्तमुक्तावलीगतवृत्तलक्षणानि टीकायामस्यां यथास्थानं सम्यगुक्तानि वर्तन्ते। एषा श्रुतिर्टीका श्रुतबोधाध्येतॄणां कृते परमोपादेया भविष्यतीति मे मतिः ।

श्रीकालिदासरचिते 'श्रुतबोध' सञ्ज्ञे ।
बालावबोधजननीं 'श्रुति' नामधेयाम् ॥
टीकां सुवृत्तसुमनाञ्च बृजेशशुक्लः ।
कृत्वाऽर्पयत्यजसुतापदकञ्जयुग्मे ॥
'श्रुतबोध-श्रुति' श्चैषा श्रवणाद् हृदयङ्गता ।
छात्रवृन्दोपकाराय निर्मिता सम्मिता मया ॥

॥ इति कालिदास रचिते श्रुतबोधग्रन्थे बृजेशकुमारशुक्लप्रणीता 'श्रुति' टीका समाप्ता ॥

अन्यव्– (हे) मृगमदमुदिते ! रम्भास्तम्भोरुकान्ते ! सुतनु ! बाले ! यत्र प्रथमं चत्वारो वर्णा अलघवः (स्युः), षष्ठकः समगेऽपि (दीर्घौ भवेत्) तद्वत् षोडशाद्यौ द्वौ षोडशान्त्यौ तथान्त्यौ (दीर्घौ स्याताम्)। मुनिमुनिमुनिभिश्चेद् विरामो दृश्यते (तर्हि) वन्द्यैः कवीन्द्रैः प्रसिद्धा सा स्रग्धरा निगदिता ।

स्मृतिव्याख्या– जिस छन्द के प्रत्येक चरण में इक्कीस वर्ण हों जिनमें प्रथम चार अक्षर, षष्ठ, सप्तम, चतुर्दश, पञ्चदश, सप्तदश, अष्टादश, विंशति (बीसवाँ) और इक्कीसवाँ अक्षर गुरु हो सात-सात अक्षरों पर विराम (यति) हो तो उसे वन्दनीय श्रेष्ठ कवि प्रसिद्ध स्रग्धरा नामक छन्द कहते हैं। पिङ्गलच्छन्दःसूत्र में इसका लक्षण देते हुए कहा गया है कि यदि प्रत्येक चरण में मगण, रगण, भगण, नगण तथा तीन यगण हों तो उसे स्रग्धरा छन्द कहते हैं। सात-सात अक्षरों पर विराम (यति) होनी चाहिए। यथा– "स्रग्धरा म्रौ भ्नौ यौ य् त्रिसप्तगाः।" (पि०सू० ७/२५)। वृत्तरत्नाकर (३/१०४) तथा छन्दोमञ्जरी (२/२१२) में इस छन्द का लक्षण इस प्रकार है– "म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम्।" आचार्य क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक (१/३७) में स्रग्धरा का लक्षण दिया है– "युक्तं मरभनैर्यैश्च त्रिभिः सप्ताक्षरैस्त्रिभिः। छेदैश्च स्रग्धरावृत्तमेकविंशाक्षरं विदुः।" स्रग्धरा छन्द में ही वृत्तमुक्तावलीकार श्रीकृष्णभट्ट ने भी इस छन्द का लक्षण लिखा है जो अधोलिखित है–

"पूर्वे स्युर्वेदवक्रास्तदुपरि यगणः शुद्धषट्कं च वक्रो ।
रद्वन्द्वान्तेऽथ वक्रः पुनरपि चरणानीति चत्वारि यस्याम् ॥
मार्त्तण्डाश्वैर्मुनीन्द्रैः पुनरपि मुनिभिर्यत्र विश्रान्तिरुक्ता ।
छन्दःसन्दोहकल्पद्रुमकुसुमकृतस्रग्धरा स्रग्धरा सा ॥"

इस प्रकार सर्वत्र स्रग्धरा छन्द का यह लक्षण एक समान ही है।

उदाहरण[१]– म० र० भ० न० य० य० य०

चत्वारो यत्र वर्णा प्रथम म म ल घ वः षष्ठ कः स स मोऽपि —प्रथमपाद।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१

म० र० भ० न० य० य० य०

द्वौ तद्वत्सोडशाद्यौ मृग म द मु दि तौ षो ड शान्त्यौ तथान्त्यौ —द्वितीयपाद।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१

स्रग्धरा के अन्य तृतीय तथा चतुर्थ चरणों में गुरु-लघु की व्यवस्था ऐसी ही होगी ।

॥ इति स्मृतिव्याख्या ॥

---

१. द्वितीयोदाहरण– सारम्भानुभावप्रियपरिचयया स्वर्गरङ्गाङ्गनानाम् ।
लीलाकर्णावतंसश्रियमतनुगुणश्लेषया संश्रयन्त्या ॥
आभाति व्यक्तमुक्ताविचकिलवली वृन्दकुन्देन्दुकान्त्या ।
त्वत्कीर्त्या भूषितेयं भुवनपरिवृढस्रग्धरेव त्रिलोकी ॥

सहायकग्रन्थानुक्रमणिका

१. छन्दः कौमुदी– श्री नारायणशास्त्रि खिस्ते, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस सिटी–१९४४

२. छन्दोमञ्जरी (स्टीकवङ्गानुवादसहित)– श्रीगङ्गादास, सम्पादक– रामधन भट्टाचार्य, धर्मतला स्ट्रीट, कलकत्ता–१९३५

३. पिङ्गलच्छन्दःसूत्रम्– पिङ्गलाचार्य (हलायुधभट्टकृतवृत्तिसहितम्) सम्पादक– जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य, कलिकाता-१९२८

४. ध्वन्यालोकः– आनन्दवर्धन, सम्पादक– पं० दुर्गाप्रसाद काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब, मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली– १९८३

५. वृत्तरत्नाकर– केदारभट्ट ('पञ्चिका' टीकायुक्तः) सम्पादक– आचार्य श्रीशीलस्कन्धमहास्थविर, निर्णयसागर मुद्रणालय मुम्बई– १९०८.

६. वृत्तरत्नाकर– केदारभट्ट (नारायणभट्टीटीकायुक्तः)– सम्पादक-वैद्यनाथशास्त्री, चौखम्बा संस्कृतसीरीज आफिस, विद्या विलास प्रेस, बनारस सिटी–१९४८

७. वृत्तमुक्तावली– श्रीकृष्णभट्टकवि, सम्पादकः– भट्टश्रीमथुरानाथशास्त्री, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर– १९६३

८. सुवृत्ततिलकम्– आचार्य क्षेमेन्द्र, ('प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्) श्री पं० ब्रजमोहन झा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी– १९६८

९. श्रुतबोध-वृत्तरत्नाकर (सटीकः)– वेङ्कटेश्वर प्रेस मुम्बई।

१०. श्रुतबोधः-कालिदासः ('विमला' संस्कृतहिन्दीटीकोपेतः)– श्री कनकलाल ठक्कुरः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी– १९८९.